वर्ष—१ जनवरी १९८२ अंक—१

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाशनगर, छपरा (बिहार)

बेलड़ मठ-७११२०२
हावड़ा ।
११-११-८१

मेरे प्रिय केदारनाथ,

तुम्हारा ८.१०.८१ का पत्र प्राप्त हुआ और तथ्यों से अवगत हुआ । प्रतिदान में विजया और दीपावली की मेरी बधाइयाँ, प्यार और आशीर्वाद ग्रहण करो ।

मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ कि द्वितीय महाधिवेशन से प्रेरित होकर ठाकुर, माँ, स्वामीजी तथा श्रीरामकृष्ण के अन्य प्रत्यक्ष शिष्यों के उपदेशों का प्रचार करने के लिए तुम अपने आवासीय नगर छपरा में एक स्वतंत्र केन्द्र की स्थापना कर रहे हो । श्री श्री ठाकुर तुम पर अनुकम्पा करें, उनसे मेरी यह आंतरिक प्रार्थना है ।

मैं तुम्हारे प्रयत्न की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ । विश्वास है तुम सकुशल हो ।

प्यार और आशीर्वाद सहित,

सस्नेह तुम्हारा
वीरेश्वरानन्द

(२)

रामकृष्ण मठ
पो०-बेलुड़ मठ, जि०-हावड़ा
पिन : ७११-०२
पड़ाव : नयी दिल्ली
२८-११-८१

दूरभाष : ६६-३६१९

मेरे प्रिय लाभ,

तुम्हारा ३० अक्टूबर का पत्र प्राप्त हुआ ।

तुम्हारी पत्रिका के प्रकाशन के विषय में जानकर मैं प्रसन्न हूँ । मैं तुम्हारे प्रयत्नों की पूर्ण सफलता की कामना करता हूँ ।

विश्वास है, तुम स्वस्थ और सोत्साह हो ।

प्यार और शुभकामनाओं सहित,

सस्नेह तुम्हारा
वीरेश्वरानन्द ।

उत्तिष्ठित जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

विवेक दीप

श्री रामकृष्ण-विवेकानन्द-विचारधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष-१ जनवरी, १९८२ अंक १

उठो, जगो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सह संपादक

देव आनन्द मधुकर

सम्पादकीय कार्यालय

रामकृष्ण निलयम्,

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१ ३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

षड् वार्षिक	१०० रु०
द्वि वार्षिक	५० रु०
वार्षिक	२० रु०
एक प्रति	२ रु०

रचनाएँ एवं सहयोग राशि सम्पादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

इस अंक में

पृष्ठ

१. श्री रामकृष्ण स्तोत्राणि — स्वामी विवेकानन्द — ३

२. सम्पादकीय सम्बोधन — ४

३. विवेक दीप का प्रकाशन १२ को ही क्यों उपयुक्त — स्वामी शक्ति बालक — ८

४. संन्यासी का गीत — स्वामी विवेकानन्द — १२

५. स्वामी विवेकानन्द — प्रेमचन्द — १४

६. आधुनिक भारत के निर्माता : स्वामी विवेकानन्द — जवाहर लाल नेहरू — १८

७. सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के अग्रदूत : स्वामी विवेकानन्द — डा० आनन्द नारायण शर्मा — २१

८. अभिज्ञा — जगगोविन्द सहाय 'उन्मुक्त' — २४

९. स्वामी विवेकानन्द की लोक-चेतना — डा० केदारनाथ लाभ — २५

१०. पत्रावली — स्वामी अभेदानन्द — ३०

आशीर्वचन

पार्वती योगाश्रम, 'शक्तिपुरी,'
शिवनगरी, छपरा
दि० १९-१२-८१ ई०

प्रिय लाभ जी,

'विवेक दीप' के प्रकाशन की योजना के सम्बन्ध में सूचनाएँ मिलीं। योजना उत्तम है—लोक-हितकारी।

शान्तिपूर्ण अलौकिक (दिव्य) जीवनाभिलाषि-जनों की मुख्य रूप से तीन आवश्यकताएं हैं—(१) उनकी जिज्ञासा की तीव्रता बढ़े; (२) उनके विकास के लिए सही दिशा (मार्ग-दर्शन) मिले तथा (३) उन्हें आलौकिक जीवन में प्रवेश करने की योग्यता प्राप्त हो।

'विवेक दीप' पत्रिका का प्रकाशन समाज (जन-समुदाय) के लिए मानसिक सुपथ्य के रूप में लाभप्रद हो तथा मुमुक्षु जीवों की उपर्युक्त तीनों आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो।

पत्रिका की पवित्रता सर्वदा बनी रहे।

'विवेक दीप' से अधिक से अधिक लोग लाभान्वित हों।

ईश्वरानुकम्पा से प्रेरित सम्पादक एवं प्रकाशक की शुभ भावनाओं से समाज लाभान्वित हो। 'बहुजन हिताय' प्रयास में सम्पादक और प्रकाशक सफलीभूत हों— इसके लिए आशीर्वाद।

स्वामी शक्तिबालक

यह अंक

स्वामी विवेकानन्दजी का जन्म अँग्रेजी तारीख के अनुसार १२ जनवरी, १८६३ ई० को हुआ था। स्वामीजी के जन्म-दिवस के अवसर पर (१२ जनवरी, १९८२ ई०) ही 'विवेक दीप' का प्रकाशन आरंभ हो रहा है। यह १२ अंक बड़ा अर्थवान है। इस १२ अंक की आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए जगदम्बा पार्वती के परम उपासक, आत्मोपलब्ध महात्मा, स्वामी शक्ति बालकजी महाराज ने अपने लेख विवेक दीप का प्रकाशन १२ को ही उपयुक्त' में श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द के शाश्वत सम्बन्धों का भी आध्यात्मिक विश्लेषण किया है,

स्वामी विवेकानन्द न केवल विभ्राट संन्यासी ज्ञान-योगी या वेदान्त के अभिनव भाष्यकार थे बल्कि संवेदनशील कवि भी थे। उनकी कविता दैवी प्रेरणा से उद्भूत होती थी। 'संन्यासी का गीत' की रचना स्वामीजी ने न्यूयार्क में अँग्रेजी में की थी। इसमें कठोर वैराग्य, समरसता अद्वैत तथा अभय के भाव की बड़ी विलक्षण व्यंजना हुई है जो सबके लिए प्रेरणास्पद है। स्व० निरालाजी ने इसका हिन्दी रूपान्तरण किया था।

उपन्यास सम्राट् प्रेमचंद ने अपनी पत्रिका 'हंस' में स्वामी विवेकानन्द जी की लघु जीवनी लिखी थी। इसका ऐतिहासिक महत्व है। इसे हमने हंस से साभार लिया है।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने स्वामी विवेकानन्द जन्म शताब्दी के अवसर पर १७ जनवरी, १९६३ को दिल्ली के रामलीला मैदान में आयोजित समारोह को सम्बोधित करते हुए नव भारत के निर्माण में स्वामीजी की भूमिका का भव्य स्मरण किया था।

हिन्दी के कवि, समीक्षक और आचार्य डॉ० आनन्दनारायण शर्मा भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीयता के उद्‌गाता के रूप में स्वामीजी का स्मरण अपने लघु निबंध में किया है।

नवमानवता वादी मूल्यों के प्रसिद्ध हिन्दी कवि और समाज सेवी श्री जय गोविन्द सहाय 'उन्मुक्त ने अपनी कविता 'अभिज्ञा' में मन को चंचलता और आवेगों से मोड़कर अपनी संस्कृति के सत्यानंद से जोड़ने की प्रेरणा दी है।

स्वामी अभेदानंद श्री रामकृष्ण के शिष्य और स्वामी विवेकानन्दजी के गुरु भाई थे। स्वामीजी के निर्देश पर उन्होंने भी अमेरिका जाकर अपने विद्वत्तापूर्ण व्याख्यानों से वहाँ के निवासियों को प्रभावित किया था। वे भारत के प्रथम संन्यासी थे जिनसे अमेरिका के राष्ट्रपति ने भेंट की थी। उनके पत्र अध्यात्म मार्ग के प्रारंभिक पथिकों के लिए बड़े उपयोगी हैं।

श्री रामकृष्ण स्तोत्राणि

स्वामी विवेकानन्द

(१)

स्थापकाय च धर्मस्य सर्वधर्म स्वरुपिणे ।
अवतारवरिष्ठाय रामकृष्णाय ते नमः ।।

(२)

नरदेव देव जय जय नरदेव
शक्ति समुद्र समुत्थतरंगं
दर्शित प्रेम विजृम्भित रंगम् ।
संशय राक्षस नाश महास्त्रं
यामि गुरुं शरणं भववैद्यम्
नरदेव देव जय जय नरदेव ।।१।।
अद्वय तत्वसमाहित चित्तं
प्रोज्ज्वल भक्ति पटावृतवृत्तम् ।
कर्म कलेवरमद्भुत चेष्टं
यामि गुरुं शरणं भववैद्यम् ।।२।।
नरदेव देव जय जय नरदेव

(१)

अर्थ—धर्म के प्रतिष्ठाता तथा समस्त धर्मों के स्वरूप, सभी अवतारों में श्रेष्ठ, हे राम कृष्ण, आपको प्रणाम है ।

(२)

हे नरदेव ! हे देव ! आपकी जय हो ! जो शक्तिरूपी समुद्र से उठनेवाली तरंग के समान हैं, जिन्होंने प्रेम की भाँति-भाँति की लोलाएँ दिखायी हैं, जो सन्देहरूपी राक्षस के विनाश के लिए महा अस्त्र के समान हैं, उन्हीं संसाररूपी रोग के वैद्य गुरु की शरण में मैं जाता हूँ । हे नरदेव ! हे देव ! आपकी जय हो ।।१।।

एक अद्वितीय (ब्रह्म) तत्त्व में जिनका चित्त समाहित है, जिनका चरित्र अति श्रेष्ठ एवं परमोज्ज्वल भक्ति रूपी वस्त्र से आच्छादित है (अर्थात् जिनके भीतर ज्ञान और बाहर भक्ति है), जिनकी देह कर्ममय है अर्थात् जो अपने शरीर के माध्यम से लगातार लोगों के हित के लिए कर्म कर रहे हैं, जिनके कार्य-कलाप अत्यंत अद्भुत हैं, उन्हीं संसार रूपी रोग के वैद्य गुरु की शरण में मैं जाता हूँ । हे नरदेव ! हे देव ! आपकी जय हो ।।२।।

विवेक दीप : प्रेरणा और प्रयोजन

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

स्वामी विवेकानन्दजी के पावन जन्म-दिवसोत्सव (१२ जनवरी, १९८२ ई०) के अवसर पर प्रकाशित "विवेक दीप" आपके हाथों में है। मैं इस घटना को साक्षी-भाव से देख रहा हूँ।

भौतिक जगत् की भाँति मनुष्य के आत्मिक जगत् में भी कभी-कभी विलक्षण घटनाएँ घटती हैं। इन्हें देखकर चकित-चमत्कृत हो जाना पड़ता है, मौन भाव से विनत हो जाना पड़ता है।

कैसे कहूँ, क्या हुआ! आज से चार महीने पूर्व एक दिन संध्या को मैं अपने कमरे में अकेला बैठा किसी भाव में खोया था। भाव किसी चैतन्य का था। आँखें, खुली और स्थिर। टिक गयी थीं सामने दीवार पर। अचानक एक ज्योतिर्मय छवि कोने में से उभर कर सामने खड़ी हो गयी। मैं भौंचक। यह क्या है! मेरे मन का भ्रम है। मेरी आँखों को धोखा हो रहा है। और मूर्ति यथावत् खड़ी है। मन ही मन प्रणाम कर आह्लादित-आनंदित भाव से खड़ा होता हूँ कि मूर्ति अंतर्धान हो जाती है। उस आलोक पुरुष की विभा देर तक मन-प्राणों को आलोड़ित करती रहती है। अर्थ गुनता हूँ। निष्कर्ष निकालता हूँ—मेरे जैसे सामान्य व्यक्ति के जीवन में यह ऐसा कुछ नहीं है जिसका आध्यात्मिक भाष्य किया जा सके। शान्त हो जाता हूँ।

कुछ ही दिनों के बाद कुछ ऐसा ही फिर-फिर होने लगता है। मैं देखता हूँ, मगर किसी से कुछ कहता नहीं। अपनी लघुता और घटना की दिव्यता में कोई ताल-मेल नहीं बैठा पाता। लेकिन महसूसता हूँ, कोई मेरे कंधे पर सवार है। सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते उसी आलोक-पुंज का चिंतन मुझे मथता है और अपने वृत्त के विस्तृत आयाम में घेरता है।

'मैं क्या करूँ, महाराज! कुछ मेरी समझ में नहीं आता'—मेरा प्रश्न है, उस दिव्यात्मा से।

आलोक पुरुष अपलक नेत्रों को मुझ पर गड़ाए केवल खड़ा रहता है—थोड़ी दूर पर।

मैं भीतर ही भीतर शान्ति और अशान्ति, भय और रोमांच तथा आवेग और स्पंदन के झूले पर झूलता रहता हूँ।

आत्मा से कोई आवाज गूँजती है। "तुम्हें कुछ करना है। जड़ता की हद हो गयी। मेरे बच्चे, उठो, जगो और तब तक नहीं दम लो जब तक लक्ष्य न पा लो।"

'मगर क्या है लक्ष्य मेरा जिसे पाने के लिए उठूँ, जगूँ!' 'अपने आराध्य के जीवन-दायी अमृत-संदेशों का प्रचार-प्रसार'—उत्तर हृदय के किसी कोने से बिजली की भाँति कौंध गया।

बात ठीक थी। भगवान् श्रीरामकृष्ण देव का अवतरण उन्नीसवीं शताब्दी के विश्व की कदाचित् सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं निर्मल घटना है। प्रभु ईसा मसीह का धरती पर आगमन जिस प्रकार परम चैतन्य का उज्वल उन्मेष है उसी प्रकार श्री रामकृष्ण देव का शरीर ग्रहण करना आध्यात्मिकता के गंगा सागर में महाज्वार का उठना है। रोम्याँ रोलाँ ने कहा—"अपने हर आगमन में प्रभु अपने को अधिक पूर्णता से प्रकट करता है देश और काल की भिन्नता के कारण

ही श्रीरामकृष्ण जीसस क्राइस्ट के छोटे भाई थे'।१

विश्व में जो शाश्वत धर्म है, रामकृष्ण उसी के पार्थिव रूपान्तरण थे।

जगत् में ऋत की जो अखंड धारा अबाध रूप से बह रही है, श्रीरामकृष्ण उसी की प्रदीप्त लहर थे।

अखिल ब्रह्माण्ड के जड़-चेतन जिस एक व्यक्त सूत्रात्मा में गुँथे हुए हैं, श्री रामकृष्ण उसी के पुष्पित प्रकाश थे।

दिव्यता का जो अनादि नाद सृष्टि-संगीत बनकर गूँज रहा है, रामकृष्ण उसी के शंख-नाद थे। शायद रामकृष्ण के पूर्व किसी अवतार में इतनी अधिक परिपूर्णता और आध्यात्मिक नियताप्ति नहीं थी।

शायद रामकृष्ण के पूर्व किसी अवतार ने या विश्व के किसी महात्मा ने इतनी विविध और गहन धार्मिक साधना नहीं की थी 'भावराज्य के अधिराज श्री रामकृष्ण कोई अठारह भिन्न-भिन्न भावों से सिद्धि लाभ कर चुके थे। वे यह भी कहा करते थे कि यदि वे भाव मुखी न रहते तो उनका शरीर न रहता।'२ इस्लाम और ईसाई धर्म तक की साधना कर उन्होंने जो सिद्धि-लाभ किया, उसने उन्हें वह दृष्टि दी जिससे सर्व-धर्म समभाव की आचार-संहिता बनती है। उन्होंने घोषणा की—"यत मत, तत पथ"—जितने मत हैं, सत्य की, परमात्मा की उपलब्धि के, उतने रास्ते हैं।

वे भीतर से ज्ञानी, बाहर से भक्त और आचरण से कर्मयोगी थे। ज्ञान, भक्ति और कर्म का—व्यक्तित्व की पूर्णता के लिए, व्यक्ति-चेतना को पूर्णता के कैलास-कूट पर प्रतिष्ठित करने के लिए—समन्वय आवश्यक है। राष्ट्र या विश्व की भावात्मक एकता के लिए श्रीरामकृष्ण का जीवन स्वयं में एक प्रमाण है। उनके उपदेशों का हर शब्द ऋचा है, हर वाक्य वेद है।

और स्वामी विवेकानन्द! यदि श्रीरामकृष्ण परम-चेतना के देश के सम्राट् थे तो स्वामी जी उसके प्रधान मंत्री। एक सूत्र थे, दूसरे भाष्य। एक बोध थे, दूसरे उसके हृदय से फूटकर अपनी प्रखर धार और शीतलता से विश्व के ताप-तप्त वक्ष को पाट देने वाली गंगा। विश्व के धर्म और अध्यात्म की तथा मानवता की संस्कृति की रक्षा और समृद्धि के लिए ईश्वरीय सेना के दोनों अद्भुत् सेनापति थे। कठोर त्याग, दृप्त वैराग्य, परम भक्ति और अबाध निष्काम कर्म के स्वामीजी चल विग्रह थे। 'रूप, गुण तथा विद्या में, भाषण पटुता, शास्त्रों की व्याख्या, लोक कल्याणकारी कामना में तथा साधना एवं जितेन्द्रियता में स्वामी जी के समान सर्वज्ञ; सर्वदर्शी महापुरुष वर्तमान शताब्दी में और कोई भी पैदा नहीं हुआ। भारत के भावी वंशधर इस बात को धीरे-धीरे समझ सकेंगे। ... ज्ञान में शंकर, सहृदयता में बुद्ध, भक्ति में नारद, ब्रह्मज्ञता में शुकदेव, तर्क में बृहस्पति, रूप में कामदेव, साहस में अर्जुन और शास्त्र ज्ञान में व्यास जैसे स्वामीजी को सम्पूर्ण रूप से समझने का समय उपस्थित हुआ है।"३

स्वमीजी संन्यास के वृक्ष के एक अनूठे फूल थे। वे उस फूल की भाँति थे जो केवल सुगंध नहीं बिखेरता बल्कि सुगंध बिखेरकर फल में परणित हो जाता है। संन्यास की भूमि में कर्मशीलता की लता लगाकर स्वामीजी ने वेदांत के ज्ञान को प्रवृत्ति से जोड़ दिया था। उन्होंने भारत भूमि को जगदम्बा के रूप में देखा और भारत की सेवा को जगदम्बा की सेवा समझा। स्वभावतः इस झंझावाती संन्यासी ने राष्ट्र-प्रेम, हरिजन-उद्धार, शूद्रों और पिछड़ा वर्ग के लोगों के

---

१. दि लाइफ ऑफ रामकृष्ण : राम्या रोलां : अद्वैत आश्रम : जून १९७९ : पृ० ११-१२

२. विवेकानंद जी के संग में : शरच्चन्द्र चक्रवर्ती श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर (१९७०) पृ० २७

३. स्वामी विवेकानन्द जी के संग में : पृ० ३३७

सर्वांगीण विकास, नारी-शिक्षा, नवीन अध्यवसाय, निर्भीकता, नैतिकता और चरित्र-निर्माण की प्रेरणा का बड़ा ही विलक्षण मंत्र दिया। रामकृष्ण मठ और मिशन उनके आदर्शों और सपनों का एक जीवित प्रतिष्ठान बन गया।

रामकृष्ण-मठ और मिशन श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द की विचार-धारा का अनाहत चक्र है। जीव की सेवा शिव-भाव से करने का आदर्श विश्व में सर्वप्रथम इसी ने प्रस्तुत किया।

मुख्यरुप से मनुष्यों में आध्यात्मिक-चेतना को स्फुरित करना इसका लक्ष्य है। स्वामी विवेकानन्द कहते थे—'अनुभूति ही धर्म है : न बातें, न सिद्धान्त, चाहे वे कितने ही सुन्दर क्यों न हों।' आत्मा या परमात्मा का प्रत्यक्ष अनुभव ही इसकी परीक्षा और धर्म का लक्षण है। रामकृष्ण आन्दोलन अधिक से अधिक लोगों में उसी प्रत्यक्ष अनुभव को संभव करने की चेष्टा करता है। यह लोगों में पवित्रता के द्वारा, सही और शुद्ध जीवन यापन की पद्धति के द्वारा चरित्र-निर्माण का प्रयास करता है।

यह आन्दोलन वर्ग-विहीन, सम्प्रदाय-विहीन, प्रगतिशील हिन्दुत्व की समग्रता का समर्थन करता है। अनेक आधुनिक सुधारवादी आन्दोलन हिन्दूधर्म और संस्कृति के कुछ ही पक्षों को लेकर चलते हैं। लेकिन रामकृष्ण-विचारधारा हिन्दू धर्म में जो कुछ भी भद्र है, जो कुछ भी शिवात्मक है सब को स्वीकार करती है। यह भक्ति, योग, ज्ञान और कर्म सब को स्वीकृति देती है।

रामकृष्ण-विचार धारा, धार्मिक ताल-मेल का संदेश देने के कारण आज सम्पूर्ण विश्व को आकर्षित करने लगी है। विवेकानन्द जी कहते थे—'ईसाई को हिन्दू या बौद्ध नहीं होना है न हिन्दू या बौद्ध को ईसाई होना है लेकिन एक दूसरे के भावों को पचाकर, अपनी निजता को बचाते हुए, विकास के अपने विधान के अनुसार बढ़ सकता है।',

यह विचार-धारा आधुनिकता से युक्त, विज्ञान को स्वीकार कर, विधेयात्मक दृष्टि से सामाजिक प्रतिबद्धता का निर्वाह करने में विश्वास करती है। संक्षेप में, रामकृष्ण विचार-धारा अधुनिक मनुष्य की स्वाभाविक और उचित माँग की सहज पूर्ति कर उसे पूर्ण मनुष्य बनाने का मार्ग प्रशस्त करती है, उसे उत्प्रेरित करती है, ऊर्जस्वित करती है और आध्यात्मिक तेज भरकर सहज ही प्रदीप्त-श्रद्धा से मंडित करती है।

सामान्यतः सारे संसार को और विशेषतः भारत को रामकृष्ण-विवेकानन्द-विचार-धारा की आज जितनी आवश्यकता है, उतनी शायद कभी नहीं थी। आर्थिक, साम्प्रदायिक और जातिगत विषमता की चक्की में पिसता हुआ, अश्रद्धा, अनास्था के पाश्चात्य रोग से कराहता हुआ, धर्म- विमुखता की धुरी में घिसता हुआ, मानसिक विकारों की आग में झुलसता हुआ, उद्देश्य हीनता और वृत्तिहीनता की राह में भटकता हुआ आज का भारत कहाँ जा रहा है? ऐसा क्या है जो उसकी अस्मिता को ही घुन-सा भीतर ही भीतर खाये जा रहा है! ऐसा क्या है, जो उसे भौतिकता की चमक में भीतर से खोखला बनाये जा रहा है! ऐसा क्या है; कि हमारे हरिजन बंधु धर्म-परिवर्तन करने पर विवश हो गए हैं, युवक मूल्यों को अस्वीकार रहे हैं और प्रौढ़ कोई आदर्श प्रस्तुत नहीं कर पा रहे हैं? हमें इन सब बातों पर विचार करना पड़ेगा। हम किसी धूप में तप रहे है। हमें कोई छाँह चाहिए। रामकृष्ण-विवेकानन्द विचार धारा हमें एक अक्षयवट की छाँह प्रदान करती है। हमें उस बोधि-वृक्ष तक जाना होगा। उसकी शीतल छाँह ग्रहण करनी होगी।

हिन्दी में ऐसी कोई मासिक पत्रिका नहीं जो रामकृष्ण-विवेकानन्द की प्रदीप्त विचार धारा से लोगों को परिचित कराये, उन प्रकाश पुंजों

की किरण महल से झोपड़ी तक ले जाये। जिसके आलोक से मनुष्य अंधकार से प्रकाश में, असत् से सत् में और मृत्यु से अमृत में प्रवेश कर सकता है—'विवेक दीप' वही विमल प्रकाश फैलाने का एक विनम्र प्रायास करेगा।' 'विवेक दीप' विश्व-मानवता के साथ भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म में जो कुछ भी स्वस्थ और सुन्दर है—सबको अपनी वाणी का आलोक प्रदान करेगा, मनुष्य को उसके भीतर छिपी पूर्णता की अभिव्यक्ति में सहायता देगा।

मैं मुग्ध होता हूँ। तंद्रा टूटती है। प्रकाश पुंज सघन-सा हो जाता है। मन में कोई चंदनी बयार बह जाती हैं। जी हल्का हो जाता है।

तभी एक प्रश्न उठ जाता है। शंका घिर आती है। अपनी सामर्थ्य की सीमा का ज्ञान होने लगता है। सोचता हूँ—कहाँ से यह कार्य हो सकेगा। एकाध अंक निकल भी गया तो भविष्य में पत्रिका के बन्द हो जाने से क्या मैं उपहास का पात्र नहीं बन जाऊँगा! मैं काँप जाता हूँ।

फिर स्वामी जी के एक वक्तव्य पर ध्यान जाता है—"भविष्य में क्या होगा, इसी चिन्ता में जो सर्वदा रहता है उससे कोई कार्य नहीं हो सकता। इसलिए जिस बात को तू यह समझता है कि यह सत्य है उसे अभी कर डाल, भविष्य में क्या होगा, क्या नहीं होगा, इसकी चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है? तनिक सा तो जीवन है, यदि इसमें भी किसी कार्य के लाभा-लाभ का विचार करते रहें तो क्या उस कार्य का होना संभव है? फलाफल देनवाले तो एकमात्र वे ईश्वर हैं। जैसा उचित होगा वैसा ही वे करेंगे। इस विषय में पड़ने से तेरा क्या प्रयोजन है? तू उस विषय की चिन्ता न कर और अपना काम किए जा।"

मैं आश्वस्त हो जाता हूँ। मित्रों से प्रोत्साहन मिलता है। रामकृष्ण मठ और मिशन के वर्त्तमान अध्यक्ष, श्रीमत स्वामी वीरेश्वरानन्द जी महाराज के बेलुड़ तथा नयी दिल्ली से और श्रीमत स्वामी शक्ति बालक जी महाराज के पार्वती योगाश्रम, छपरा से प्रेरणास्पद आशीर्वचन आते हैं। मैं कृतज्ञता, आभार और धन्यता से विनत हो जाता हूँ।

और 'विवेक दीप' अपनी निर्वात-निष्कंप शत-वर्तिका लेकर झलमला उठता है।

आपसे अनुरोध है—अपना सहयोग-स्नेह मुक्त-भाव से दीजिए जिससे यह 'विवेक दीप' अपने अखंड आलोक से आप सबको दीपित करता रहे।

भगवान श्री रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द जी आप सबका मंगल करें।

सौ वर्ष के आलसी और हीन-वीर्य जीवन की अपेक्षा एक दिन का दृढ़ कर्मन्यता का जीवन कहीं अच्छा है।

—भगवान् बुद्ध

केवल वही व्यक्ति सबकी अपेक्षा उत्तम रूप से कार्य करता है, जो पूर्णतया निःस्वार्थ है, जिसे न तो धन की लालसा है, न कीर्ति की और न किसी अन्य वस्तु की ही। और मनुष्य जब ऐसा करने में समर्थ हो जायगा, तो वह भी एक दिन जागेगा और उसके भीतर से ऐसी कार्य-शक्ति प्रकट होगी जो संसार की अवस्था को संपूर्ण रूप से परिवर्तित कर सकती है।

स्वामी विवेकानन्द

'विवेकदीप' का प्रकाशन
१२ को ही उपयुक्त

स्वामी शक्ति बालक

जिस पत्रिका में अध्यात्म का प्रकाशन हो उसके प्रकाशन की तारीख १२ उपयुक्त ही है।

बारह में एक और दो संख्या ही हैं। परन्तु दोनों अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये हुए हैं। फिर भी 'एक' अपने आप में पूर्ण है। 'एक' को अपनी पूर्णता के लिए किसी के सहयोग की अपेक्षा नहीं। एक का खण्ड भी संभव नहीं। जो अखण्ड है, वह सब में व्याप्त है। तात्पर्य यह कि अन्य जितनी भी संयथाओं का विस्तार है, सबका आधार एक ही है।

उसी तरह वह परमात्व तत्व अन्य की अपेक्षा बिना, स्व-प्रकाश, अखण्ड एवं पूर्ण एक सत्ता है।

दो का अपना अस्तित्व है, परन्तु जल और लवण की भाँति। लवण जल में मिल जाता हैपरन्तु जल बन कर नहीं। उसका अपना गुण'लवण-रस' बना हीरहता है। लवण-रस(कण)जल के जिस अंश में स्थित रहता है वहाँ अपना घनत्व भी कायम रखता है। परमाणु की दृष्टि से लवण भी परमाणुओं का ही संगठित रूप है, परन्तु उसके रस (गुण-स्वाद) की सार्थकता जल पर आधारित है।

सृष्टि-नियमानुसार कारण की अपनी स्वतंत्र-सत्ता हो सकती है परंतु कार्य की अपनी स्वतन्त्र-सत्ता नहीं होती। कार्य में कारण की विद्यमानता सतत रहती है। कार्य की उत्पत्ति और विलय का आश्रय स्थल भी कारण ही है। अतः कारण स्वतंत्र हुआ, परन्तु कार्य स्वतंत्र नहीं।

जल की उत्पत्ति रस तन्मात्रा से है। इसलिए जल का स्वभाविक गुण रस है। लवण पृथ्वी तत्व है। पृथवी तत्व की उत्पत्ति गंध तन्मात्रा से है। इसलिए,लवण का स्वाभाविक गुण गंध हो सकता है, रस नहीं। रस उसका आरोपित गुण हुआ। लवण रस के लिए जल पर आधारित है। लवण की सार्थकता (उपयोग) लवण-रस (स्वाद) को लेकर ही है। गंध तन्मात्रा की उत्पत्ति रस तन्मात्रा से है। गंध (कार्य) की अपेक्षा रस (कारण) अधिक स्थायी है, पूर्ण नहीं। उसी तरह, दो का अपना अस्तित्व है, फिर भी उसका खण्ड संभव है। 'दो' को अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए, अपनी सार्थकता (उपयोगिता) प्रदर्शित करने के लिए शाश्वत 'एक' पर आधा- रित रहना पड़ता है।

जिसका खण्ड संभव है, उसकी एकरुपता स्थायी नहीं।

जिसकी एकरूपता स्थायी नहीं, उसका गुण भेद भी निश्चित है।

जिसमें गुण-भेद होगा, उसमें स्थायी स्व प्रकाश संभव नहीं।

इसलिए गुण-भेद--युक्त प्रकृति में स्थायी स्व-प्रकाश नहीं। प्रकाश के लिए इसे (प्रकृत को) उस स्व-प्रकाशमान परमात्मा पर आधारित रहना पड़ता है। इसलिए 'दो' की संख्या प्रकृति को संकेतित करती है। गुण-प्रधान होने से प्रकृति में अनेकता (अनेकरूपता)संभव है। जहाँ अनेकरुपता है, वहाँ खंड है ही। अनेकरुपता और खंड अस्थायी हैं, फिर भी,उनका अस्तित्व है। प्रकृति अपनी अनेकरुपता के लिए भी पुरुष (परमात्मा) पर आधारित है। परमात्मा किसी पर आधारित नहीं। वह स्वतंत्र, स्वप्रकाश है। इसलिए परमात्मा को एक की संख्या

से ईंगित करना उपयुक्त है। एक अपने आप में पूर्ण है, स्वतंत्र है।

जैसा कि ऊपर बता आया हूँ, प्रकृति में अपना प्रकाश (चेतना) नहीं है। चैतन्य प्रकृति (सक्रिय प्रकृति) अपनी सक्रियता के लिए चैतन्य परमात्मा पर आधारित है। वह परमात्म प्रकाश (चैतन्य) प्रकृति में है परन्तु चैतन्य प्रकृति का स्वाभाविक गुण नहीं। और न तो वह परमात्म प्रकाश प्रकृति के हर तत्व और गुणों में अनुभव करने को ही शक्य है। प्रकृति का सतोगुण उस परमात्म प्रकाश से अधिक प्रभावित है, सन्निधि बनाये रखने में समर्थ है। दूसरे शब्दों में यह कहना अनुचित नहीं होगा कि करुणामय प्रभु की चैतन्य धारा (आह्लादिनी शक्ति) प्रकृति के सतोगुण को ही सर्वप्रथम प्रभावित करती है। जिससे प्रकाशमान समष्टि चित्त की उत्पत्ति होती है। समष्टि चित्त के अतिरिक्त प्रकृति का कोई भी गुण या तत्व शुद्ध श्वेत प्रकाशवाला नहीं है। इस स्थूल भौतिक प्रकाश में अन्य रंगों की भी संभावना है, परंतु चित्त का प्रकाश पूर्ण श्वेत है। इसलिए इस प्रकाश को दिव्य प्रकाश भी कहा जाता है।

प्रकृतिस्थ मानव जिन इंद्रियों के माध्यम से कुछ जान सकता है और लोक-व्यवहार कर सकता हैं उनमें एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति प्रकृति के रजोगुण और तमोगुण अंश से है। अतः इन एकादश (ग्यारह) इन्द्रियों में परमात्म प्रकाश अल्प और प्रकृति अंश अधिक है। प्रकृति अंश की अधिकता से इनकी प्रवृत्ति भी प्रकृति (भौतिक) की ओर स्वाभाविक रूप से बनी रहती है। प्रवृति के सान्निध्य में रहने से इन इन्द्रियों में मोह और भ्रम पैदा करने की क्षमता है। ये एकादश इन्द्रियाँ जीव के लिए बाह्य सूचक ज्ञान का माध्यम और भोग का साधन रूप है।

मानव के अन्दर परमात्म-प्रकाश की अनुभूति करने का अगर कोई माध्यम है तो वह है 'बारहवीं इन्द्रिय—'बुद्धि'।

बुद्धि की उत्पत्ति चित्त के सतोगुण से होती है।
मन की उत्पत्ति रजोगुण से होती है।
पंच ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति रजोगुण तन्मात्रा से होती है।
पंच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति तमो गुण प्रधान पंच भूतों से होती है।
कर्मेन्द्रियाँ तमः प्रधान (अंधकार युक्त) हैं।
ज्ञानेन्द्रियों में प्रकाश का आभास मात्र है।
मन में अल्प प्रकाश ठहरने की संभावना है—जुगनू की भाँति।
बुद्धि ही एक ऐसी है जो चन्द्रमा की भाँति परमात्म प्रकाश से स्वयं को प्रकाशित कर सकती है एवं अन्य इन्द्रियों को भी प्रकाश दे सकती है (संयमित रख सकती है)।

चन्द्र का कार्य है सूर्य से प्रकाश ग्रहण कर वसुंधरा पर उसे फैलाना। यह उपयोग करने वाले पर निर्भर करता है कि वह चन्द्रमा के प्रकाश में चोरी करे या पूजा करे। स्वाभाविक है कि चोरी करने वाला (विषयोन्मुखी) व्यक्ति प्रकाश की ओर भी न्यूनता पसंद करता है और पूजा करने वाला (परमात्माभिमुख) व्यक्ति प्रकाश की तीव्रता पसंद करता है ताकि वह अपने इष्ट की छवि भली भांति निहार सके।

बुद्धि का उपयोग जब भौतिकता की तरफ किया जाता है तो उसका घनत्व बढ़ जाता है। परिणाम यह होता है कि परमात्म प्रकाश (चैतन्य) अन्य इंद्रियों तक समुचित रूप में पहुँच नहीं पाता। चैतन्य की अल्पता से इन एकादश इन्द्रियों में जड़ता आ जाती है। जैसे घने बादलों से होकर सूर्य का प्रकाश पृथ्वी पर भलीभाँति आ नहीं सकता क्योंकि घनीभूत बादल किरणों के ताप का शोषण कर लेते हैं और क्षीण प्रकाश ही पृथवी को दे पाते हैं उसी तरह भौतिक विषयों से घनीभूत बुद्धि परमात्म चैतन्य से इन एकादश इन्द्रियों को वंचित कर देती है।

आत्म चिन्तन से जब यह बुद्धि आध्यात्मिक हो जाती हैं तब इस बुद्धि की स्थूलता (घनत्व)

समाप्त होकर इसमें सूक्ष्मता आ जाती है। बुद्धि की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्था को ही ऋतम्भरा प्रज्ञा या विवेक कहते हैं। यह विवेक भौतिक बुद्धि (विद्या) से सर्वथा भिन्न है। भौतिक बुद्धि की भी सार्थकता इस अभौतिक विवेक के उदय कराने में ही है।

इसीलिए सन्त तुलसी ने अपने पद में लिखा है—'विद्या बिनु विवेक उपजाये' तात्पर्य यह है कि वह विद्या किस काम की जो विवेक के उदय में सहायक न बने। इस अलौकिक विवेक को ही किसी-किसी ने ऋतम्भरा-बुद्धि भी कहा है। जब तक इस विवेक का उदय नहीं होता तब तक जीव में स्थायी आनन्द का अवतरण नहीं होता। आनन्द तो स्थायी है ही। आनन्द का कभी अभाव नहीं होता। अभाव होता है उसके प्रति सज्ञानता का इसीलिए इस प्रकार कहना अधिक उपयुक्त होगा कि—"विवेक होने पर जीव उस स्थायी (शाश्वत) आनन्द में स्थित हो जाता है।" इसलिए हर मनुष्य के प्रति मेरा यही सुझाव (संदेश) है—'विवेक का उदय करके आनन्द में स्थित हो जाओ।'

जगो—मोह-निद्रा से
चलो—सत्-पथ पर
स्थित होओ—विवेक में
वर्तो—आनन्द में होकर
दृष्टि—समग्रता में रहे
अनुराग—परमात्मा में रहे

ऐसा नहीं कि मेरे संदेश नवीन हैं।, पूर्व में भी महानुभावों ने जीव को जगने की प्रेरणा दी। वाणी के माध्यम से, लेखनी के माध्यम से एवं अपने पीछे दीर्घ तक रहने वाली चिति शक्ति को छोड़कर।

संदेशों से जीवों में सजगता आती रही हैं। वर्तमान में भी आती है। सजग जीव चलने का प्रयत्न भी करते हैं, परन्तु उनके सामने समस्या होती है———सत्—पथ की

सत्-पथ क्या बाहर की पगडण्डी है?

सजग-व्यक्ति उस पगडण्डी को छोड़ देता है जिस पर मोहान्ध-व्यक्ति चल रहे हैं। इससे उसको लाभ यह होता है कि वह अशुभ-वृत्तियों को पैदा करनेवाले स्थलों से दूर रह जाता है। परन्तु, वह जिस पगडण्डी का अब राही बनता है उसमें उसे शुभ-वृत्तियों के पैदा करने वाले तीर्थ स्थल तो जरूर मिलते हैं, तथापि उसे सत्य की प्राप्ति शेष रह जाती है।

जब उसके पग इन तीर्थ-स्थलों पर जाने वाली पगडण्डियों पर चलते-चलते थक जाते हैं, तब थका हुआ मनुष्य अपने मनोनुकूल बाह्य-आचारों को ही सत्यपथ मान लेता है। ये आचार उसकी निकटस्थ संस्कृति और परिस्थिति द्वारा प्रभावित होते हैं। स्वाभाविक है कि परिस्थिति द्वारा प्रभावित आचार में वह भय और बन्धन का अनुभव करेगा। भय और बन्धन से युक्त आचार लोक-प्रतिष्ठा तो दे सकते हैं, परन्तु अभय-पद सत्य की प्राप्ति नहीं करा सकते।

बाह्य-आचार से थके हुए इन्द्रिय और मन ही उस सत्-पथ की अभिलाषा करते हैं, जिससे सत्य की प्राप्ति हो, वे नहीं जो बाह्याचार में ही रस लेते हैं।

सत्योपलब्धि में किसी आचार-विशेष का प्रतिबन्ध नहीं। आचार बोधी को पवित्र नहीं करते बल्कि आचार ही बोधी द्वारा पवित्र होते हैं। बोधी द्वारा पथ का निर्माण नहीं होता बल्कि बोधी द्वारा आकर्षण होता है पथ का और पथिकों का—उन पथिकों का जो सत्य के सच्चे जिज्ञासु हैं।

अगर नरेन्द्र रामकृष्ण परमहंस के बाह्याचार को लक्षित करता तो सम्भव था दिग्भ्रमित हो जाता। आचार को लक्षित करना अपनी मान्यता को प्रश्रय देना है। मान्यता में स्थायित्व और स्वाभाविकता नहीं होती। मान्यता को प्रश्रय देने का अर्थ है अपने विचारों (बुद्धियों) को प्रश्रय देने का अर्थ हैं, अपने विचारों (वृत्तियों) के प्रति हठधर्मिता बरतना। जब कि वृत्तियां परि-

को सत्य से अधिक दूर कर देती है।

आकर्षण वस्तु-स्थिति का गुण है। आनन्द-सागर में लहराने वाले परमहंस में आकर्षण था, आचार नहीं। आचार का प्रतिबन्ध तो उसमें है, जो शरीर की सुध में है। जो शरीर से ही बेसुध हैं (आत्मानुरागी है) उसे आचार की सुध कहाँ? उसका हिलना ही प्रकृति को सजीव कर देता है, उसका हँसना ही प्रकृति को रसयुक्त कर देता है। उससे निश्चित आचार की अपेक्षा ही भूल है।

वह सागर है। उसे और जल की आवश्यकता नहीं। उसमें असीमता है। इसलिए नदियाँ स्वतः उसमें प्रवेश के लिए उतावली होती हैं। जो किसी विशिष्ट मान्यता के बांध से अपने को घेर देते हैं वे कूप या तालाब की भाँति सागर के निकटस्थ होकर भी उसमें मिल नहीं पाते।

सागर-सम चैतन्यानन्द में स्थित परमहंस में असीमता थी। असीमता ही सत्याकर्षण और प्रेम का मूल (हृदय) है। परमहंस के समक्ष जाने वाले वे लोग खिंच गये जिन लोगों ने उस सत्याकर्षण का स्वागत किया। उनमें नरेन्द्र भी एक था। परन्तु समक्ष जाकर भी वे लोग वंचित रहे जो अपनी मान्यताओं से लड़ते रहे। वे सत्याकर्षण को उसी तरह नहीं समझ पाये जैसे शिर दर्द के रोगी का ख्याल अपने दर्द की तरफ रहता है, ठण्डे पवन की तरफ नहीं। अपितु वह ठण्डे पवन के समुचित उपयोग एवं आनन्द से वञ्चित रह जाता है।

यह सत्याकर्षण ही समष्टि में पूरे विश्व को धारण किये हुए है और यह सत्याकर्षण ही राम कृष्ण सदृश अनवरोध पिण्डों का आश्रय लेकर जीवों के सत्पथ का प्रकाशक बनता है।

सत्पथ वह नहीं जिस पर चलकर अनित्य लक्ष्य पर पहुँचा जाय। सत्पथ तो वह है जिस पर चल कर उस पर पहुँचा जाय जो नित्य है।

मन बुद्धि और इन्द्रिय ये तीनों अनित्य हैं। अतः अनित्य द्वारा निश्चित (निर्मित) किया गया मार्ग भी अनित्य ही होगा। जो पथ अनित्य है वह सर्वत्र, सबके लिए, सब समय उपलब्ध होना सम्भव नहीं। जो पथ नित्य-सत्ता द्वारा निर्धारित हैं, वह सर्वत्र, सबके लिए, सब समय उपलब्ध है। परन्तु उस पथ का पथिक वही बन सकता है जो उस सत्याकर्षण का स्वागत करता हो।

सत्याकर्षण की स्वीकृति ही 'ध्यान' है।

सत्याकर्षण का स्वागत ही 'समाधि' है।

ध्यान से समाधि तक का जो पथ है वही सत्य-पथ है। जीव की यात्रा ध्यान के इस किनारे (छोर) से शुरू होकर समाधि के उस किनारे (छोर) पर जाकर समाप्त होती है, जहाँ उसे सत्यासत्य का ज्ञान हो जाता है। जिसके बाद यह जीव पुनः, इस मिथ्या आकर्षण में वापस नहीं लौटता।

सत्पथ सुगम एवं कल्याणकारी है फिर भी सभी जीव उसे सहज ही स्वीकार नहीं पाते। इसका प्रधान कारण है कि मोहान्ध जीव को इस सत्यपथ की यात्रा में अपने द्वारा अर्जित की गयी वासनाओं की पूंजी के खो जाने का भय बना रहता है। वासनाओं के बोझ से वह दबता जा रहा है, फिर भी वह मोह का परित्याग कर उस बोझ को फेंक नहीं रहा। वे जीव जो मोह-वश वासनाओं के बोझ का परित्याग करने में भयभीत है, परन्तु सत्योपलब्धि के प्रबल-जिज्ञासु हैं, समर्थ गुरु ऐसे जीवों को धक्का देकर (शक्तिपात करके) सत्पथ का पथिक बना देते हैं।

सत्यपथ के समान जीव के लिये शान्ति का दूसरा मार्ग नहीं।

सत्योपलब्धि के समान विश्रान्ति का दूसरा स्थल नहीं।

सत्योपलब्धि के लिए विवेक की शरणागति आवश्यक है। विवेक वह अवस्था है जिसमें मनुष्य सद्-असद् का ज्ञान प्राप्त कर अलौकिक जीवन (दिव्य जीवन) में पदार्पण करता है। विवेक युक्त उसका भावी जीवन परमात्मा-प्रकाश से होकर गुजरता है। परमात्मा-प्रकाश से संयुक्त जीवन उस जलते हुए 'दीप' के समान है जो दूसरों को भी प्रकाशित करता है।

'विवेक दीप' वह दीप है जो अन्दर-बाहर सर्वत्र प्रकाशित करता है।

'विवेक दीप' से ही अन्तःकरण और बाह्य इन्द्रियों की पवित्रता कायम रह सकती है। 'विवेक दीप' उस आभूषण के समान है जिसको धारण करने वाला मानव से महा मानव बन सकता है।

परमात्म-प्रकाश की यथार्थ अनुभूति बारहवें इन्द्रिय 'ऋतम्भरा बुद्धि' में ही सम्भव है इस-लिए 'विवेक दीप' के प्रकाशन की तारीख १२ उपयुक्त है।

संन्यासी का गीत

स्वामी विवेकानन्द

छेड़ो संन्यासी, छेड़ो, छेड़ो वह तान मनोहर,
गाओ वह गान जगा जो अत्युच्च हिमाद्रि-शिखर पर
सुगभीर अरण्य जहाँ हैं, पार्वत्य प्रदेश जहाँ हैं,
भव-पाप-ताप ज्वालामय करते न प्रवेश जहाँ हैं...
जो संगीत-ध्वनि-लहरी अतिशय प्रशान्त लहराती
जो भेद जगत-कोलाहल नभ-अवनी में छा जाती,
धन-लोभ, यशोलिप्सा या दुर्दान्त काम की माया
सब विधि असमर्थ हुई है छूने में जिसकी छाया,
सत्-चित् आनन्द-त्रिवेणी करती है जिसको पावन,
जिसमें करके अवगाहन होते कृतकृत्य सुधीजन....
छेड़ो, छेड़ो, हाँ छेड़ो वह तान दिव्य लोकोत्तर
गाओ, गाओ संन्यासी, गाओ वह गायन सुन्दर....
ॐ तत् सत् ॐ

तोड़ो जंजीरें जिनसे जकड़े हैं पैर तुम्हारे ....
वे सोने की हैं तो क्या कसने में तुमको हारे ?
अनुराग-घृणा-संघर्षण, उत्तम वा अधम विवेचन,
इस द्वन्द्व भाव को त्यागो, हैं त्याज्य उभय आलम्बन।
आदर गुलाम पाये या कोड़ों की मारें खाये,
वह सदा गुलाम रहेगा कालिख का तिलक लगाये,
स्वातंत्र्य किसे कहते हैं—वह जान नहीं है पाता
स्वाधीन सौख्य जीवन का उसकी न समझ में आता।
त्यागो संन्यासी, त्यागो तुम द्वन्द्व भाव को सत्वर,
तोड़ो शृंखल को तोड़ो, गाओ यह गान निरंतर
ॐ तत् सत् ॐ

घन अन्धकार हट जाये, मिट जाये घोर महातम,
जो मृगमरीचिका जैसा करता रहता बुद्धि-भ्रम,
मोहक भ्रामक आकर्षण अवनी है चमक दिखाता,
तम से घनतर तम में वह जीवात्मा को ले जाता।
जीवन की यह मृग-तृष्णा बढ़ती अनवरत निरंतर,
मेटो तुम इसे सदा की पीयूष ज्ञान का पीकर।
यह तम अपनी डोरी में जीवात्मा-पशु को कसकर
खींचा करता बलपूर्वक दो जन्म-मरण-छोरों पर।
जिसने अपने को जीता, उसने जय पाई सब पर....
यह तथ्य जान फन्दे में पड़ना मत बुद्धि गवाँकर।
बोलो संन्यासी, बोलो हे वीर्यवान बलशाली,
सानन्द गीत यह गाओ, छेड़ो यह तान निराली....
ॐ तत् सत् ॐ

अपने-अपने कर्मों का फल भोग जगत् में निश्चित,"
कहते हैं सब, "कारण पर हैं सभी कार्य अवलम्बित,
फल अशुभ-अशुभ कर्मों के, शुभ कर्मों के हैं शुभ फल,
किसकी सामर्थ्य बदल दे, यह—
नियम अटल औ अविचल ?
इस मृत्युलोक में जो भी करता है तनु को धारण,
बन्धन उसके अंगों का होता नैसर्गिक भूषण।"
यह सच है, किन्तु परे जो गुण नाम रूप से रहता
वह नित्य मुक्त आत्मा है, स्वच्छन्द सदैव विचरता।
'तत् त्वमसि'— वही तो तुम हो, यह—
ज्ञान करो हृदयांकित,
फिर क्या चिन्ता संन्यासी, सानन्द करो उद्घोषित—
ॐ तत् सत् ॐ

क्या मर्म सत्य का, इसको वे कुछ भी समझ न पाते,
सुत बन्धु पिता माता के स्वप्नों में जो मदमाते।
आत्मा अतीत नातों से, वह जन्म-मरण से विरहित,
वह लिंग-भेद से ऊपर, सुख—
दु:ख-भावों से अविजित।
वह पिता कहाँ किसका है——
किसका सुत, किसकी माता ?
वह शत्रु-मित्र किसका है,——
उसका किससे क्या नाता ?
जो एक, सर्वमय शाश्वत,——
जिसका जोड़ा न कहीं है,
जिसके अभाव में कोई सम्भव अस्तित्व नहीं है;
'तत् त्वमसि'—वही तो तुम हो,——
समझो हे संन्यासी वर,
अतएव उठो, गाओ तुम'——
गाओ यह गान निरन्तर————
ॐ तत् सत् ॐ

चिर मुक्त विज्ञ आत्मा है,—
वह अद्वितीय, वह अतुलित,
अक्लेद्य अशोष्य - निरामय,—

वह नाम - रूप - गुण - विरहित,
उनके आश्रय में बैठी संसार-मोहिनी माया
देखा करती है अपने मादक स्वप्नों की छाया;
साक्षीस्वरूप माया का आत्मा सदैव है सुविदित,
जीवात्मा और प्रकृति के रूपों में वही प्रकाशित'
'तत् त्वमसि'-वही तो तुम हो, समझो हे संन्यासीवर,
उच्चस्वर से यह गाओ, यह तान अलापो सुन्दर—
ऊँ तत् सत् ऊँ

हे बन्धु, मुक्ति पाने को तुम फिरते कहाँ भटकते ?
इस जग या लोकान्तर में तुम मुक्ति नहीं पा सकते,
अन्वेषण व्यर्थ तुम्हारा शास्त्रों, मन्दिर-मन्दिर में,
जो तुमको खींचा करती वह——
रज्जु तुम्हारे कर में ।
दुःख शोक त्याग दो सारा,——
तुम वीतशोक बस हो लो,
वह रज्जु हाथ से छोड़ो, बोलो संन्यासी, बोलो——
ऊँ तत् सत् ऊँ

दो अभय-दान सबको तुम——
हों सभी शान्तिमय सुखमय,
है प्राणिमात्र को मुझसे कुछ भी न कहीं कोई भय,
पृथ्वी पाताल गगन में मैं ही आत्मा चिर-संस्थित,
आशा भय स्वर्ग नरक को मैंने तज दिया अशंकित ।'
काटो-काटो-काटो तुम इस विधि माया के बन्धन,
निःशंक प्राणपण से तुम गाओ, गाओ यह गायन——
ऊँ तत् सत् ऊँ

चिन्ता मत करो तनिक भी नश्वर शरीर की गति पर,
यह देह रहे या जाये, छोड़ो तुम इसे नियति पर,
जब कार्य शेष है इसका, तब जाता है तो जाये,
प्रारब्ध कर्म फिर इसको अब चाहे, जहाँ बहाये,
कोई आदर से इसको मालाएँ पहनाएगा,
कोई निज घृणा जताकर पैरों से ठुकराएगा,
तुम चित्त-शांति मत तजना, आनन्द निरत नित रहना
यश कहाँ, कहाँ अपयश है——इस धारा में मत बहना।
जब निंदक और प्रशंसक, जब निंदित और प्रशंसित,
एकात्म एक ही हैं सब, तब कौन प्रशंसित निंदित ?
यह ऐक्य-ज्ञान हृदयंगम करके हे संन्यासीवर,
निर्भय आनंदित उर से गाओ यह गान मनोहर——
ऊँ तत् सत् ऊँ

करते निवास जिस उर में मद——
काम लोभ औ मत्सर,
उसमें न कभी हो सकता——
आलोकित सत्य प्रभाकर——
भार्यत्व कामिनी में जो देखा करता कामुक बन,
वह पूर्ण नहीं हो सकता, उसका न छूटता बंधन,
लोलुपता है जिस नर को स्वल्पाति स्वल्प भी धन में,
वह मुक्त नहीं हो सकता, रहता अपार बंधन में,
जंजीर क्रोध की जिसको रखती है सदा जकड़कर,
वह पार नहीं कर सकता दुस्तर माया का सागर।
इन सभी वासनाओं का अतएव त्याग तुम कर दो,
सानन्द वायुमण्डल को बस एक गूँज से भर दो——
ऊँ तत् सत् ऊँ

सुख हेतु न गेह बनाओ, किस घर में अमा सकोगे ?
तुम हो महान्, फिर कैसे पिंजड़े के विहग बनोगे ?
आकाश अनन्त चँदोया, शय्या धरती तृण-शोभित,
रहने के लिए तुम्हारे यह विश्वगेह है निर्मित,
जैसा भोजन मिल जाये, संतोष उसी पर करना,
सुस्वादु स्वाद विरहित में कुछ भी मत भेद समझना,
शुद्धात्मरूप को जिसमें सद् ज्ञानालोक चमकता
कुछ खाद्य पेय क्या उसको अपवित्र कहीं कर सकता ?
उन्मुक्त स्वतन्त्र प्रवाहित तुम नदी तुल्य बन जाओ,
छेड़ो यह तान अनूठी, सानन्द गीत यह गाओ——
ऊँ तत् सत् ऊँ

ज्ञानी बिरले, अज्ञानी कर घृणा हँसेंगे तुम पर,
ह-हे महान्, तुम उनको मत लखना आँख उठाकर।
स्वाधीन मुक्त तुम, जाओ, पर्यटन करो पृथ्वी पर,
अज्ञान-गर्त-पतितों का उद्धार करो तुम सत्वर,
माया-आवरण-तिमिर में जो पड़ वेदना सहते,
तुम उन्हें उबारो जाकर, जो मोह-नदी में बहते।
विचरो जन - हित - साधन को——
स्वच्छन्द मुक्त तुम अविजित ।
दुःख की पीड़ा से निर्भय, सुख-अन्वेषण से विरहित,
सुख दुःख के द्वन्द्व स्थल के तुम परे महात्मन्, जाओ,
गाओ गाओ सन्यासी उच्च स्वर से तुम गाओ——
ऊँ तत् सत् ऊँ

इस विधि से छीज दिनों दिन,——
है कर्म स्वीय बल खोता,
बन्धन छुटता आत्मा का, फिर उसका जन्म न होता,
फिर कहाँ रह गया मैं तू, मेरा तेरा, नर ईश्वर ?
मैं हूँ सबमें, मुझमें सब आनन्द परम लोकोत्तर।
आनन्द परम यह हो तुम, आनन्द सहित सब गाओ,
हे बन्धुवर्य संन्यासी, यह तान पुनीत उठाओ——
ऊँ तत् सत् ऊँ

स्वामी विवेकानन्द

प्रेमचन्द

भारत के नव-जागरण की शंख-ध्वनि करने-वाले महापुरुषों में स्वामी विवेकानन्द का स्थान अद्वितीय है। उनका दिव्य संदेश वस्तुतः भारत के लिए ही नहीं, अपितु संपूर्ण विश्व के लिए नए आध्यात्मिक उत्थान का उद्‌घोष था।

स्वामी विवेकानन्द का जन्म १८६३ ई० में हुआ था। बचपन में उनका नाम नरेन्द्रनाथ था। वे प्रारंभ से ही होनहार दिखाई देते थे। उन्होंने अंग्रेजी स्कूलों में शिक्षा पाई और सन् १८८४ ई० में बी० ए० की डिग्री प्राप्त की। बचपन से ही उनके अंदर एक प्रबल अध्यात्मिक भूख थी। कुछ दिनों तक वे ब्रह्म-समाज के अनुयायी रहे। वे नित्य प्रार्थना में सम्मिलित होते। गला बहुत ही अच्छा होने के कारण कीर्तन-समाज में उनका बड़ा आदर था। पर ब्रह्म-समाज के सिद्धान्त उनकी प्यास न बुझा सके। अतः सत्य की खोज में वे इधर-उधर भटकने लगे। उन दिनों स्वामी राम कृष्ण परमहंस के प्रति लोगों की बड़ी श्रद्धा थी। नवयुवक नरेन्द्रनाथ ने भी उनके सत्संग से लाभ उठाना प्रारंभ किया और धीरे-धीरे उनके उपदेशों से वे इतने प्रभावित हुए कि उनकी भक्त-मंडली में सम्मिलित हो गए। उस सच्चे गुरु से अध्यात्म-तत्व और वेदान्त-रहस्य जानकर युवक नरेन्द्र की आध्यात्मिक पिपासा शांत हुई। उनकी गुरु-भक्ति गुरु-पूजा की सीमा तक पहुँच गई थी। वे जब कभी परमहंस जी की चर्चा करते, तब एक-एक शब्द से श्रद्धा और सम्मान टपकता था।

स्वामी विवेकानन्द ने गुरुदेव के प्रथम दर्शन का वर्णन इस प्रकार किया है—"देखने में वे बिलकुल साधारण आदमी मालूम होते थे। उनके रूप में कोई विशेषता न थी। बोली बहुत सरल और सीधी थी। मैंने मन में सोचा कि क्या यह संभव है कि यह सिद्ध पुरुष हों।" मैं धीरे-धीरे उनके पास पहुँचा और उनसे वे प्रश्न पूछे, जो अक्सर औरों से पूछा करता था—"महाराज, क्या आप ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखते हैं?" उन्होंने जबाव दिया—'हाँ।' मैंने फिर पूछा—"क्या आप उसका अस्तित्व सिद्ध कर सकते हैं?" जबाब मिला—'हाँ।' मैंने पूछा-'कैसे? जबाब मिला-"मैं उसे ठीक वैसे ही देखता हूँ जैसे तुम्हें!"

परमहंस जी की वाणी में बिजली की-सी शक्ति थी, जो संशयात्मक को तत्क्षण ठीक रास्ते पर लगा देती थी और यही प्रभाव आगे चलकर स्वामी जी की वाणी और दृष्टि में भी उत्पन्न हो गया था।

नरेन्द्र की माता उच्चाकांक्षिणी स्त्री थीं। उनकी इच्छा थी कि मेरा लड़का वकील हो, अच्छे घर में उसका ब्याह हो और दुनिया के सुख भोगे। जब रामकृष्ण परमहंस के प्रभाव में आकर नरेन्द्र-नाथ ने संन्यास लेने का निश्चय किया तब उनकी माता परमहंस जी की सेवा में उपस्थित हुई और अनुनय-विनय की कि मेरे बेटे को जोग न दीजिए। पर जिस हृदय ने शाश्वत प्रेम और आत्मानुभूति के आनंद का स्वाद पा लिया हो, उसे लौकिक सुख-भोग कब तक अपनी ओर खींच सकते हैं? नरेन्द्रनाथ की वैराग्यवृत्ति अधिकाधिक बढ़ती ही गई।

रामकृष्ण परमहंस की महासमाधि के बाद उनके शिष्यों के नेतृत्व का भार नरेंद्र पर ही आया। तभी उन्होंने तथा उनके साथियों ने संन्यासी का व्रत लिया। उसके बाद स्वामी जी उच्च आध्यात्मिक ज्ञान की प्राप्ति के लिए हिमालय की ओर चले गए। कई वर्षों तक वे तपस्या और चित्त-शुद्धि की साधना में लगे रहे। वे सिद्ध महात्माओं की खोज करते और उनके सत्संग से लाभ उठाते। सत्य की खोज करने के लिए उन्होंने सभी प्रकार के कष्ट प्रसन्नता से सहे। स्वामी

जी ने स्वयं कहा है कि मुझे दो-दो, तीन-तीन दिनों तक खाना नहीं मिलता था। अक्सर ऐसे स्थान पर नंगे बदन सोया हूँ जहाँ की सर्दी का अंदाज थर्मामीटर से भी नहीं लग सकता। कितनी हो बार शेर-बाघ और दूसरे शिकारी जानवरों का सामना हुआ, पर राम के प्यारे को इन बातों का क्या डर ?

पहाड़ से उतरकर बंगाल, संयुक्त प्रांत (उत्तर प्रदेश), राजपूताना, बंबई आदि का उन्होंने भ्रमण किया। जो जिज्ञासु जन श्रद्धावश उनकी सेवा में उपस्थित होते थे, उन्हें वे धर्म और नीति के तत्त्वों का उपदेश देते और जिसे विपद्-ग्रस्त देखते, उसको सांत्वना देते थे। मद्रास उस समय नास्तिकों और जड़वादियों का केन्द्र बन रहा था। अँगरेजी विश्वविद्यालयों से निकले हुए नवयुवक, जो अपने धर्म और समाज-व्यवस्था के ज्ञान से बिलकुल कोरे थे, खुल्ले-आम ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया करते थे। स्वामी जी यहाँ काफी समय तक रहे और कितने ही होनहार नौजवानों को धर्म-परिवर्तन से रोका तथा जड़वाद के जाल से बचाया। कितनी ही बार लोगों ने उनसे वाद-विवाद किया, उनकी खिल्ली उड़ाई, पर वे अपने वेदांत के रंग में इतना डूबे हुए थे कि उन्हें किसी के हँसी-मजाक की तनिक भी परवा न थी। धीरे-धीरे उनकी ख्याति नवयुवक-मंडली से बाहर निकलकर कस्तूरी की गंध की तरह चारों ओर फैलने लगी। बड़े-बड़े धनी-मानी लोग उनके भक्त और शिष्य बन गए और उनसे नीति तथा वेदांत-तत्त्व के उपदेश लिए। जस्टिस सुब्रह्मण्यम् अय्यर, महाराजा रामानंद (मद्रास और महाराजा खेतड़ी (राजपूताना) उनके प्रमुख शिष्यों में से थे।

जब स्वामी जी मद्रास में थे तब उनको अमरीका में सर्वधर्म-सम्मेलन के आयोजन का समाचार मिला। वे तुरत उसमें सम्मिलित होने को तैयार हो गए। हिन्दू-धर्म का उनसे बड़ा ज्ञानी तथा वक्ता और था ही कौन ? भक्त-मंडली की सहायता से वे इस पवित्र यात्रा पर रवाना हो गए। उनकी यात्रा अमरीका के इतिहास की अमर घटना है। यह पहला अवसर था कि कोई पश्चिमी जाति दूसरी जातियों के धर्म-विश्वासों के स्वागत के लिए तैयार हुई हो।

अमरीका पहुँचकर उन्हें मालूम हुआ कि अभी सम्मेलन होने में बहुत देर है। उनके ये दिन बड़े कष्ट में बीते। निर्धनता की यह दशा थी कि पास में ओढ़ने-बिछाने तक को काफी न था। पर उनकी संतोष-वृत्ति इन सब कष्ट-कठिनाइयों पर विजयी हुई। अंत में बड़ी प्रतीक्षा के बाद, नियत तिथि आ पहुँची। संसार के विभिन्न धर्मों ने अपने-अपने प्रतिनिधि भेजे थे और यूरोप के बड़े-बड़े पादरी और धर्मशास्त्र के आचार्य हजारों की संख्या में उपस्थित थे। पहले तो किसी ने उनकी ओर ध्यान ही न दिया, पर सभापति ने बड़ी उदारता के साथ उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली, और वह समय आ गया कि स्वामी जी श्रीमुख से कुछ कहें। स्वामी जी ने ऐसी पांडित्यपूर्ण, ओजस्वी और धाराप्रवाह वक्तृता दी कि श्रोतामंडली मंत्रमुग्ध-सी हो गई। यह पराधीन भारत का हिन्दू, और ऐसा विद्वत्तापूर्ण भाषण !—किसी को विश्वास ही न होता था। आज भी उनके उस भाषण को पढ़ने से भावावेश की अवस्था हो जाती है। वास्तव में उसमें भगवद्गीता और उपनिषदों के ज्ञान का निचोड़ है। उसका सारांश यह है :

'हिन्दू-धर्म का आधार किसी विशेष सिद्धांत को मानना या कुछ विशेष विधि-विधानों का पालन करना नहीं। हिन्दू का हृदय कुछ शब्दों और सिद्धांतों से तृप्ति-लाभ नहीं कर सकता। अगर कोई ऐसा लोक है जो हमारी स्थूल दृष्टि के लिए अगोचर है तो हिंदू उस दुनिया की सैर करना चाहता है। अगर कोई ऐसी सत्ता है, जो भौतिक नहीं है, कोई ऐसी सत्ता है, जो न्याय-रूप दया-रूप और सर्वशक्तिमान् है तो हिंदू उसे अपनी अंतर्दृष्टि से देखना चाहता है। उसके संशय तभी छिन्न होते है जब वह उसे स्वयं देख लेता है।"

कर्म को केवल कर्त्तव्य समझकर करना, उसमें फल या सुख-दुख की भावना न रखना ऐसी बात थी जिससे पश्चिमवाले अब तक सर्वथा अपरिचित थे। स्वामी जी के ओजस्वी भाषणों और सच्चाई भरे उपदेशों से लोग इतने प्रभावित हुए कि अमरीकी अखबार बड़ी श्रद्धा और सम्मान के शब्दों में स्वामी जी की बड़ाई छापने लगे। उनकी वाणी में वह दिव्य प्रभाव था कि सुननेवाले आत्म.विस्मृत हो जाते थे।

अमरीका में स्वामी जी के भक्तगणों की संख्या दिनोंदिन बढ़ने लगी। चारों ओर से जिज्ञासु उनके पास पहुँचते और अपने-अपने नगर में पधारने का अनुरोध करते। स्वामी जी को अक्सर दिन-दिन-भर व्यस्त रहना पड़ता। बड़े-बड़े प्रोफेसरों और विद्वानों ने आकर उनके उपदेशों को अपने हृदय में स्थान दिया और उनका शिष्यत्व ग्रहण किया।

स्वामी जी अमरीका में करीब तीन साल रहे और वेदांत का प्रचार करते रहे। इसके बाद उन्होंने इंग्लैंड की यात्रा की। उनकी ख्याति वहाँ पहले ही पहुँच चुकी थी। अँगरेज उस समय भारत के शासक थे। उन्हें अपनी ओर आकृष्ट करने में स्वामी जी को प्रारंभ में कुछ कठिनाई हुई पर उनका अद्‌भुत अध्यवसाय और प्रबल संकल्प अंत में इन सब बाधाओं पर विजयी हुआ। वहाँ ऐसे-ऐसे वैज्ञानिक जो खाना खाने के लिए भी प्रयोगशाला न छोड़ पाते थे उनका भाषण सुनने के लिए घंटों पहले सभा में पहुँच जाते और प्रतीक्षा में बैठे रहते। उन्होंने वहाँ तीन महत्त्वपूर्ण भाषण दिए जिनसे उनकी विद्वत्ता का सिक्का उन सबके दिल पर बैठ गया। सब पर प्रकट हो गया कि जड़वाद में यूरोप भारत से चाहे कितना ही आगे क्यों न हो पर अध्यात्म का नेतृत्व भारतीयों के ही हाथ में है। वे करीब एक साल तक वहाँ रहे। अनेकानेक सभा-समितियों, कॉलेजों और क्लबों से उनके पास निमंत्रण आते थे। उनकी ओजमयी वक्तृताओं का यह प्रभाव हुआ कि बिशपों और पादरियों ने भी गिरजों में वेदांत पर भाषण दिए।

धीरे-धीरे यहाँ भी स्वामी जी की भक्त-मंडली काफी बड़ी हो गई। बहुत-से लोग, जो अपनी रुचि का आध्यात्मिक भोजन न पाकर धर्म से विरक्त हो रहे थे, वेदांत पर लट्टू हो गए और स्वामी जी में उनकी इतनी श्रद्धा हो गई कि वहां से जब वे चले तो कई अँगरेज शिष्य उनके साथ हो लिए। इनमें कुमारी नोबल भी थीं जो बाद को भगिनी निवेदिता के नाम से प्रसिद्ध हुईं। स्वामी जी ने अँगरेज़ों के रहन-सहन और चरित्र-स्वभाव को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा-समझा। इस अनुभव की चर्चा करते हुए एक भाषण में उन्होंने कहा कि यह क्षत्रियों और वीर पुरुषों की जाति है।

१६ सितम्बर सन् १८९६ ई० को स्वामी जी लगभग चार वर्षों के प्रवास के बाद स्वदेश के लिए रवाना हुए। भारत के छोटे-बड़े सब मनुष्य उनके यश को सुन-सुनकर उनके दर्शन के लिए उत्कंठित हो रहे थे। उनके स्वागत और अभ्यर्थना के लिए नगर-नगर में समितियाँ बनने लगीं। स्वामी जी जब जहाज से कोलंबो में उतरे, तो जन-साधारण ने जिस उत्साह और उल्लास से उनका स्वागत किया वह दर्शनीय था। कोलम्बो से अल्मोड़ा तक जिस-जिस नगर में वे पधारे लोगों ने राह में आँखें बिछा दीं। अमीर-गरीब, छोटे-बड़े सबके हृदय में उनके लिए एक-सा आदर-सम्मान था। यूरोप में बड़े विजेताओं की जो अभ्यर्थना हो सकती है उससे कई गुनी अधिक भारत में स्वामी जी की हुई। उनके दर्शन के लिए लाखों की भीड़ जमा हो जाती थी और लोग उनकी झलक पाने के लिए मंजिलें तय करके आते थे

स्वामी जी का रूप बड़ा सुंदर और भव्य था। उनका शरीर सबल और सुदृढ़ था, दृष्टि में बिजली का असर था, और मुखमंडल पर आत्म-तेज का आलोक! कठोर बात शायद उनकी

जबान से कभी नहीं निकली। विश्वविख्यात और विश्ववंद्य होते हुए भी उनका स्वभाव अति सरल और व्यवहार अति विनम्र था। उनका पांडित्य अगाध था। वे अँगरेजी के पूर्ण पंडित और अपने समय के सर्वश्रेष्ठ वक्ता थे। संस्कृत साहित्य और दर्शन के वे विद्वान् थे और जर्मन, हिब्रू, ग्रीक फ्रेंच, आदि विभिन्न भाषाओं पर उनका अधिकार था। वे केवल चार घंटे सोते थे। वे प्रातः चार बजे उठकर जप-ध्यान में लग जाते। प्राकृतिक दृश्यों के वे बड़े प्रेमी थे। भोर में जप-तप से निवृत्त होकर मैदान में निकल जाते और प्रकृति सुषमा का आनन्द लेते। उनकी वाणी में ऐसा प्रभाव था कि उनके भाषण श्रोताओं के हृदय पर पत्थर की लकीर बन जाते थे। कहने का ढग और भाषा बहुत सरल होती थी; पर उन सीधे-सादे शब्दों में कुछ ऐसा आध्यात्मिक भाव भरा होता था कि सुननेवाले तल्लीन हो जाते थे।

स्वामी जी अपने देश के आचार-व्यवहार, रीति,नीति, साहित्य और दर्शन, सामाजिक जीवन, उसके पूर्वकाल के महापुरुष, इन सबको श्रद्धायोग्य और सम्मान्य मानते थे। उनके एक भाषण का निम्नलिखित यह अंश सोने के अक्षरों में लिखा जाने योग्य है :

"प्यारे देशवासियो, पुनीत आर्यावर्त के बसनेवालो, क्या तुम अपनी इस तिरस्करणीय भीरुता से वह स्वाधीनता प्राप्त कर सकोगे, जो केवल वीर पुरुषों का अधिकार है ? हे भारतनिवासी भाइयो ! अच्छी तरह याद रखो कि सीता, सावित्री और दमयन्ती तुम्हारी जाति की देवियाँ हैं। हे वीर पुरुषो ! मर्द बनो और ललकारकर कहो कि मैं भारतीय हूँ, मैं भारत का रहने वाला हूँ, हरएक भारतवासी, चाहे वह कोई भी हो, मेरा भाई है। अपढ़ भारतीय, निर्धन भारतीय, ऊँची जाति का भारतीय, नीची जाति का भारतीय, सब मेरे भाई हैं। भारत मेरा जीवन, मेरा प्राण है। भारत के देवता मेरा भरण-पोषण करते हैं। भारत मेरे बचपन का हिंडोला, मेरे यौवन का आनन्दलोक और मेरे बुढ़ापे का बैकुण्ठ है।"

कलकत्ता में अध्यापन और उपदेश में अत्यधिक श्रम करने के कारण स्वामी जी का स्वास्थ्य बिगड़ गया और जलवायु-परिवर्तन के लिए उन्हें दार्जिलिंग जाना पड़ा। वहाँ से वे अलमोड़ा गए। पर स्वामी जी ने तो वेदांत के प्रचार का व्रत ले रखा था, उनको खाली बैठे कब चैन आ सकता था ? ज्यों ही तबीयत जरा सँभली, वे स्यालकोट पधारे और वहाँ से लाहौरवालों की भक्ति ने उन्हें अपने यहां खींच बुलाया। इन दोनों स्थानों पर उनका बड़े उत्साह से स्वागत-सत्कार हुआ। उन्होंने अपनी अमृतवाणी से श्रोताओं के अन्तःकरण में ज्ञान की ज्योति जगा दी। लाहौर से वे कश्मीर गए और वहां से राजपूताने (राजस्थान) का भ्रमण करते हुए कलकत्ता लौट आए। इसी बीच उन्होंने दो मठ स्थापित किए। इसके कुछ दिन बाद उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य लोक-सेवा करते हुए वेदांत का प्रचार-प्रसार करना है। इसकी शाखाएँ भारत के हर भाग में तथा विदेशों में विद्यमान हैं और वे जनता का बहुत उपकार कर रही हैं।

सन् १८९७ ई० में भारत में महामारी का प्रकोप हुआ। स्वामी जी ने देश-सेवाव्रती संन्यासियों की एक छोटी सी मंडली बना दी थी। ये सब स्वामी जी के निरीक्षण में तन-मन से दीन-दुःखियों की सेवा में लग गए। मुर्शिदाबाद, ढाका, कलकत्ता, मद्रास आदि में सेवाश्रम खोले गए। कई अनाथालय भी खुले। स्वामी जी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ रहा था, फिर भी, स्वयं घर-घर में घूम घूमकर पीड़ितों की सहायता करना, जिनसे डॉक्टर लोग भी भागते थे, यह उनके जैसे देश-भक्त का ही काम था।

अधिक श्रम के कारण स्वामी जी का स्वास्थ्य गिर गया। इन दिनों आप अक्सर समाधि की अवस्था में रहा करते थे और अपने भक्तों से

आधुनिक भारत के निर्माता स्वामी विवेकानन्द

जवाहरलाल नेहरू

सभाओं और अधिवेशनों को आयोजित करने की हमलोगों की आदत हो गयी है, और कुछ लोग इनमें हिस्सा लेकर अपने को बड़ा आदमी समझने लगते हैं और जल्दी लोकप्रिय हो जाते हैं, भले ही यह कुछ ही दिनों के लिए क्यों न हो। लेकिन आज हमलोग यहाँ एक ऐसे आदमी की यादगारी में इकट्ठे हुए हैं जो भारत के इतिहास में मशहूर हो गए हैं। मेरा ख्याल है कि वे उन थोड़े से लोगों में से थे जो हमारी पुरानी संस्कृति से सम्बद्ध थे, जिन्होंने महात्मा गांधी की तरह मुल्क को एकता में बाँधा और लोगों में नयी जिन्दगी ला दी और मुल्क को नींद से जगाया। उनकी आवाज क्षणिक नहीं थी, गो कि वह समय के मुताबिक थी फिर भी हिन्दुस्तान के दिल से उठी थी। तब से काफी वक्त गुजर चुका है। जब वे मरे, मुश्किल से वे चालीस साल के थे। बड़ा ताज्जुब होता है कि अपनी छोटी जिन्दगी में उन्होंने न केवल हिन्दुस्तान के लोगों का बल्कि तमाम दुनिया के लोगों का भी दिल जीत लिया।

अक्सर हमलोग विवेकानन्द के उज्ज्वल कार्यों को दुहराते हैं। वे बड़े आदमी थे। चूँकि वे चालीस वर्षों की कम उम्र में मर गए इसलिए लोग भूल जाते हैं कि वे बिल्कुल हमलोगों के युग के ही थे। केवल साठ साल पहले उनकी मृत्यु हुई थी। कई समस्याओं का, जैसे हिन्दुस्तान की गुलामी और मुल्क की गिरावट के प्रश्न, उन्होंने सामना किया और इनके खिलाफ उन्होंने आवाज बुलन्द की। शायद वह हिन्दुस्तान की आवाज थी जिसको बाद में चलकर महात्मा गांधी ने भी उठाया। आप जानते हैं कि कम उम्र में ही वे संन्यासी हो गए और श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य हुए। लेकिन अपनी आध्यात्मिक साधनाओं के साथ ही, उन्हें अपने देश के लिए इतना गहरा प्यार था कि जो कुछ भी उन्होंने कहा या लिखा उनका हम लोगों पर आश्चर्यजनक असर हुआ।

उनके सम्मान में जो सभा हमलोग यहाँ आज कर रहे हैं वह मेरे ख्याल से बड़ा मौजूँ है। लेकिन उनकी महान् आवाज, और उनके शब्द—जिन्हें उन्होंने पचास या साठ बरस पहले कहा था, दुहरा कर ही हम उनको याद कर सकते हैं और अगर आप उनका अध्ययन करें—जो आपको जरूर करना चाहिए—तो आप महसूस करेंगे कि वे कैसे अद्भुत आदमी थे। उनके हर शब्द में एक लौ थी। अगर आप

कहा करते थे कि अब मेरे महाप्रस्थान का समय बहुत समीप है। ४ जुलाई, १९०२ ई० को एकाएक आप समाधिस्थ हो गए। सबेरे दो घंटे समाधि में रहे। दोपहर को शिष्यों को पाणिनीय व्याकरण पढ़ाया और तीसरे पहर दो घंटे तक वेदोपदेश करते रहे। इसके बाद वे टहलने को निकले। शाम को लौटे तो थोड़ी देर माला जपने के बाद फिर समाधिस्थ हो गए और उस समाधि की अवस्था में ही पांचभौतिक शरीर त्यागकर परमधाम को सिधार गए।

स्वामी जी आज हमारे बीच में नहीं हैं, पर आध्यात्मिक ज्योति की जो मशाल वे जला गए हैं, वह सदा के लिए संसार को आलोकित करती रहेगी।

उनके व्याख्यानों या रचनाओं को पढ़ें—भले ही वे अँग्रजी में, जिस भाषा में वे अक्सर बोले और लिखे, हों या बंगला में—उन्हें आप मौजूदा वक्त के लिए भी बिल्कुल उपयुक्य पायेंगे। ऐसा नहीं है कि कुछ वर्ष पहले जो कुछ भी उन्होंने कहा वह स्थिर या ऐतिहासिक चीज हो गयी है। चीजों पर उनकी जबर्दश्त पकड़ थी। सबसे पहले, उन्हें दृढ़ विश्वास था कि हिन्दुस्तान या भारत का एक विशेष स्थान है। दूसरे सभी देशों का अपना स्थान है। उनकी तुलना हिन्दुस्तान से नहीं हो सकती। हिन्दुस्तान के चिन्तन और संस्कृति का अपना व्यक्तित्व है। हिन्दुस्तान के लोग हमेशा ऊँचे आदर्शों से युक्त रहे हैं। बहुत सारे लोग गिर गए, कमजोड़ और गुलामी की मनोवृत्ति वाले हो गए। कुछ युवकों ने सोचा कि हमें अपने मुल्क को आजाद करने के लिए कुछ करना चाहिए। यह दूसरी बात है कि उन्होंने इसे किस तरह किया।

हमें अपने दिलों और दिमागों को आजाद और मजबूत करने की कोशिश करनी चाहिए। दिलों और दिमागों के गुलाम हो जाने पर कोई आदमी या कोई मुल्क क्या कर सकता है? ऐसा ही सवाल महात्मागाँधी के सामने भी उठ खड़ा हुआ था। उन्हें एक ताकतवर सरकार का सामना करना था। उन्होंने महसूस किया कि हिन्दुस्तान की गुलामी के बोझ के कारण लोग हीन भावना से ग्रस्त हो गए हैं। वे अपने को नीच और पतित समझते है। उनके खयालों का नतीजा ही उनका असहयोग आन्दोलन था। उन्होंने लोगों को निडर होने की शिक्षा दी। उन्होंने गरीब किसानों को डर मिटा देने को कहा। हम सब लोग जानते हैं और महसूस किया है कि ये लोग कैसे जग पड़े।

यदि मैं इतना खुश किस्मत होता तो स्वामी विवेकानन्द से मिलकर मुझे खुशी होती। उनकी मृत्यु के समय मैं बच्चा नहीं था। लेकिन चूँकि मैं उन दिनों यूरोप में पढ़ रहा था इसलिए उनसे नहीं मिल सका। लेकिन उन्होंने जो कुछ कहा या लिखा है उन सबको मैंने पढ़ा है।

अब जब कि हमलोग आजाद हैं, हमलोगों को ताकत होनी चाहिए—कड़ी मिहनत करने की ताकत। लेकिन ताकत के साथ ही निर्भीकता भी होनी चाहिए। तभी ताकत किसी काम की हो सकती है। विवेकानन्द ने इस बात पर बहुत जोर दिया। इसे याद रखना चाहिए कि उन्होंने ही राजनीति का आध्यात्मिकता के साथ समन्वय किया। वे महात्मा गाँधी से उम्र में बड़े थे—मुझे माफ कीजिएगा, दोनों की उम्र में कोई खाश फर्क नहीं था। स्वामीजी ने जो कुछ लिखा या कहा उसका बड़ा महत्व है। उनके पास जागरूक बुद्धि थी, तीक्ष्ण बुद्धि थी। हमारी बुद्धि को उचित ढंग से सही दिशा में काम करना चाहिए, ऐसा नहीं कि हममें केवल दिखावटीपन हो, हमें किसी के लिए बुरा ख्याल नहीं पालना चाहिए। हमें हमेशा अपने देश के भविष्य के बारे में सोचना चाहिए। स्वामीजी ने लोगों को जगाया, सच्चाई की समझदारी दी और उन्हें सही राह पर चलने को कहा। जहाँ और जब मैंने उनकी किताबें या रचनाएँ पढ़ीं, मैं काफी प्रभावित हुआ, दर असल हर आदमी उनसे प्रभावित होगा। मैं कहूँगा कि आपको उन्हें जरूर पढ़ना चाहिए और पढ़ने के बाद, आपको अपने मन में उनका विश्लेषण जरूर करना चाहिए।

जब स्वामीजी अमेरिका गए वे मुश्किल से तीस वर्षों के थे। उनके लिए वहाँ जाना बड़ा मुश्किल था क्योंकि उनके पास पैसे नहीं थे। लेकिन उन्होंने सुना था कि कोई धार्मिक सभा अमेरिका में होनेवाली है। उन्हें वहाँ जाने की इच्छा थी। पैसे इकट्ठा करने में उन्हें कठिनाई का सामना करना पड़ा। कुछ लोगों ने उनके लिए पैसे इकट्ठे किए। जहाँ तक मुझे याद है

खेनरी के राजा ने भी उनकी मदद की। स्वामीजी से उनका मित्र-भाव था। उन्होंने उन्हें टिकट खरीद दिया, एक ओवरकोट दिया और वहां जाने में मदद की। वे किसी संस्था की ओर से वहां नहीं गये। उन्हें वहां कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन जब वे वहां पहुंचे तो उन्होंने देखा कि सभा में व्याख्यान दिए जा रहे हैं। लोग भाषण सुन रहे थे। अचानक उनलोगों ने एक अजनवी आदमी, विवेकानन्द, को संन्यासी के भेष में देखा। श्रोतागण अचभा में पड़ गए और वह अजनवी आदमी कौन था, वह जानने को चिंतित हो उठे। उन्होंने वहां एक बिल्कुल दूसरा ही माहौल पैदा कर दिया।

उनके क्या विचार थे, हमें अवश्य जानना चाहिए। बहुत लोग हमें पूछते हैं कि हमलोग यह ख्याल क्यों रखते हैं कि सारे हिन्दुस्तान को गांधीजी का अनुकरण करना चाहिए। उनका कहना है कि इससे संघर्ष होता है। यह गलत तरीका है, और हमें सच्चाई जानने की कोशिश करनी चाहिए। अगर हम गांधीजी की रचनाओं का अध्ययन करें तो हमको मालूम होगा कि हम लोगों को उन दिनों हिन्दुस्तान की आजादी की समस्या का सामना करना पड़ रहा था। यह एक महत्वपूर्ण और अहम सवाल था। हमलोगों को बुद्धि उनसे और स्वामीजी से प्रदीप्त थी। उनके कारण ही हमलोग कुछ पा सके। गांधी जी ने हमें सिखाया कि अगर कोई हमलोगों के प्रति निष्ठुर है या हम पर आक्रमण करता है तो हमें अपनी सहनशीलता नहीं छोड़नी चाहिए। उनके अनुसार हम हर समस्या अहिंसा के जरिये सुलझा सकते हैं बशर्ते हम में धीरज हो। उन्होंने साफ-साफ कहा था कि अगर हममें ताकत नहीं हो तो भाग जाने की बजाय तलवार उठा लेना बेहतर है। बन्दूक और तलवार के बिना भी उनमें काफी ताकत थी। उनकी तरह की ताकत का एक हिस्सा भी हमलोगों के पास नहीं हैं। अगर हमें बन्दूक या तलवार से ही लड़ना है तो भी हमें अपना कर्त्तव्य करना चाहिए। हमलोगों के पास किस तरह का दिमाग है? अगर वह गुस्से और नफरत से भरा हैं तो यह बुरी बात है। साधारणतः हमलोग जल्दी उत्तेजित हो जाते हैं। लेकिन अंत में यह देश को गिराता है। हिन्दुस्तान का इतिहास इस बात का गवाह है। आपको निश्चय ही हिन्दुस्तान के मस्तिष्क का विश्लेषण करना चाहिए। सारा संसार हिदुस्तान की ओर उम्मीद भरी नजरों से देख रहा है।

विवेकानन्द या गांधीजी की वाणियां हिन्दुस्तान की आवाज का प्रतिनिधित्व करती हैं। हम यह सोच नहीं सकते कि वे लोग कमजोर व्यक्ति थे। स्वामीजी ने जो लिखा उसे आपलोगों को जरूर पढ़ना चाहिए। अगर आप ऐसा करेंगे तो आपको काफी शक्ति मिलेगी। उन्हें दृढ़तापूर्वक चीजों को बर्दास्त करने की ताकत थी। उन्होंने संसार की निगाहों में हिन्दुस्तान का माथा ऊँचा किया। हमने ताकत पायी। आपको जरूर याद रखना चाहिए की असली ताकत इंसान के दिमाग या दिल में होती है, गर्चे बन्दूक और तलवार भी कुछ हद तक ताकत का इजहार करती हैं।......

हमलोगों को अपने दिल और दिमाग को तैयार करना चाहिए और एकता रखनी चाहिए। इससे हमें ताकत मिलती है। स्वामी विवेकानन्द ने हमें उस समय ताकत दी जब हिन्दुस्तान हतोत्साह था। मुल्क कई हिस्सों में बटा था। आप स्वामीजी की तरह बहादुर आदमी कहां पा सकते हैं? उनमें साहस था, मेरा मतलब है शक्ति थी, और जिसे भी उन्होंने सम्बोधित किया, उसने शक्ति पायी। मेरे कहने का मतलब यह है कि आज के दिन हमें उनकी याद करनी चाहिए, और उन्होंने हमें जो भी उपदेश दिया, उससे पूरा फायदा उठाने की कोशिश हमें जरूर करनी चाहिए। सबसे बढ़कर, हमें उनके असीम साहस और मातृभूमि के प्रति भक्ति से प्रेरणा लेनी चाहिए।

सांस्कृतिक राष्ट्रीयता के अग्रदूत : स्वामी विवेकानन्द

डा० आनन्द नारायण शर्मा

यूरोप के भारत में प्रभुत्व विस्तार और नवीन वैज्ञानिक साधनों के प्रचार के साथ यहाँ के जीवन में एक नयी हलचल और उथल-पुथल आरंभ हुई, जिसने आगे चलकर स्वाधीनता प्राप्ति के लिए संघर्ष का भी रूप धारण कर लिया। विवेकानन्द इसी नवीन सांस्कृतिक जागरण के प्रथम तूर्यनाद थे। यद्यपि उनका किसी राजनीतिक दल से दूर का भी संबंध न था और जैसा नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने उनके बारे में लिखा है—"उन्होंने खुलकर राजनीति का एक भी वाक्य नहीं उच्चारण किया, फिर भी उनकी वाणी से न केवल विदेशियों-को इस देश के प्राचीन गौरव का ज्ञान हुआ प्रत्युत देशवासियों में भी एक अनोखा स्वाभिमान जागा और उनकी दृष्टि वर्त्तमान दुरवस्था की ओर जा सकी।

विवेकानन्द का बचपन का नाम नरेन्द्र नाथ दत्त था। उनका जन्म १२ जनवरी १८६३ ई० में कलकत्ते के निकट सिमूलिका नामक स्थान में हुआ था। उनके पिता का नाम विश्वनाथ दत्त और माता का भुवनेश्वरी देवी था। विश्वनाथ दत्त एक शिक्षित और संपन्न व्यक्ति थे। नरेन्द्र का बचपन पूर्णतया वैभव विलासपूर्ण वातावरण में बीता। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर और मेट्रोपोलिटन स्कूल में हुई, जहां उन्होंने प्रथम श्रेणी में मेट्रीक की परीक्षा पास की। फिर प्रेसिडेंसी कॉलेज में दाखिल हुए। लेकिन कुछ दिनों के बाद इस कालेज को छोड़कर उन्होंने जनरल एसेम्बली इंस्टीच्यूशन में नाम लिखा लिया। उनकी गणना कॉलेज के मेधावी छात्रों में होती थी। संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य के अतिरिक्त उनकी विज्ञान, ज्योतिष, गणित और दर्शन के प्रति भी अभिरुचि थी। इसके साथ ही उन्हें व्यायाम, घुड़सवारी, तैरने और नाव खेने का शौक था। अपने स्वस्थ सुदर्शन शरीर के कारण युवावस्था में वे यूनानी सौंदर्य की साकार प्रतिमा प्रतीत होते थे। उनका गला मीठा और सुरीला था और वे वैष्णव भक्ति संबंधी पद तथा बाउल गीत बड़े मनमोहक ढग से गाते थे। उनके इसी संगीत ने जब वे एक आयोजन में अपने मित्र सुरेन्द्रनाथ मित्र के यहाँ भजन गा रहे थे—महात्मा रामकृष्ण परमहंस को उनकी ओर आकृष्ट किया। रामकृष्ण ने उन्हें दक्षिणेश्वर मंदिर में मिलने के लिए बुलाया।

आपको स्वामीजी के उपदेशों से सीख लेने की कोशिश जरूर करनी चाहिए। उन्होंने जो कुछ लिखा है, उसे आपको जरूर पढ़ना और उससे फायदा उठाना चाहिए; यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात है। फिर भी कुछ लोगों की शोर करने और व्यग्रता प्रदर्शन करने की आदत होती है। लेकिन आप देखेंगे कि वे ऐसा केवल डर से करते हैं! यह वहीं होता हैं जहाँ भय हो। जो निडर है वह इस तरह का काम नहीं करता। मैं यहाँ स्वामीजी को श्रद्धांजलि देने आया हूँ, लेकिन उन्हें याद करते समय कई तरह के ख्याल मेरे दिल में आते हैं। मैं उनके व्यक्तित्व पर बेहद मुग्ध हूँ।

इसलिए, मैं उम्मीद करता हूँ कि हमलोग प्राचीन भारत के सबक से शिक्षा लेने की कोशिश करेंगे क्योंकि अच्छी चीजें बार-बार सीखनी चाहिए। इस संसार में जब-तब प्राचीन भारत की शिक्षा देने के लिए महापुरुष आये हैं और स्वामी विवेकानन्द और महात्मागाँधी उन्ही लोगों में से थे।

नरेन्द्र अपने छात्र जीवन में प्रखर बुद्धिवादी और तार्किक थे। उनका ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं था। वे अक्सर मित्र मंडली में ईश्वर के अस्तित्व को लेकर बहस-मुबाहसे किया करते थे। उधर रामकृष्ण के संबंध में यह प्रसिद्धि फैलने लगी थी कि वे केवल परम आस्तिक ही नहीं, ईश्वर का साक्षात्कार भी कर चुके हैं। माँ काली उन्हें दर्शन देती है। स्वभावतः नरेन्द्र के मन में ऐसे व्यक्ति से मिलने की उत्सुकता वर्तमान थी। नरेन्द्र अपनी सारी जिज्ञासाओं और शंकाओं के साथ रामकृष्ण से मिले। उन्होंने इस आदमी से प्रभावित न होने का निश्चय कर लिया था। वे हर तरह से रामकृष्ण को जांचने का प्रयास करते। कभी-कभी वे ऐसे कठोर प्रश्न पूछ बैठते, जिनको सुनकर रामकृष्ण को थोड़ी पीड़ा भी होती। पर उन्हें लगता कि यही वह व्यक्ति है जिसकी उन्हें खोज थी और जो उनके संदेशो को दूर-दूर तक पहुंचा सकता है। अतएव वे बड़े स्नेह और धैर्य के साथ उस दुर्द्धर्ष युवक की शंकाओं का समाधान कर उसे श्रद्धा और आस्तिकता की दिशा में प्रेरित करते। अंततः नरेन्द्र ने रामकृष्ण का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। इसके बाद में तो रामकृष्ण के प्रभाव से या आंतरिक शक्तियों के जागरण से नरेन्द्र को भी कभी-कभी समाधि लगने लगी। वे गहरी समाधि में लीन होकर ब्रह्मानन्द का अनुभव करना चाहते थे। एक दिन उन्होंने गुरु से निर्विकल्प समाधि का मार्ग बताने का आग्रह किया। इस पर रामकृष्ण ने तनिक रोष मे उन्हें झिड़कते हुए कहा—तुम्हें लज्जा नहीं आती ! मैं तो समझता था तुम असंख्य थकी आत्माओं को आश्रय देने वाले वटवृक्ष बनोगे। उसके बदले तुम स्वार्थवश केवल अपने कल्याण की ही बात सोच रहे हो। फिर उन्होंने प्यार से समझाया, माँ काली की कृपा से यह समाधि स्वयं तुम्हारे लिए इतनी सहज हो जायगी कि साधारण अवस्था में भी तुम्हें प्राणिमात्र में व्याप्त एक ईश्वर का बोध होगा। तुम लोगों में आध्यामिक चेतना जगाओगे और दीन निर्धनों का क्लेश निवारण करोगे।

१५ अगस्त १८८६ को रामकृष्ण परमहंस को महानिर्वाण प्राप्त हो गया। उन्होंने मृत्यु से पूर्व नरेन्द्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। परमहंस जी के निधन के दो वर्ष बाद तक नरेन्द्र किसी प्रकार अपने गुरुभाइयों के बीच रहकर आश्रम की देखभाल करते रहे। फिर एक दिन अकस्मात बिना किसी को साथ लिये वे देश दर्शन को निकल पड़े। वे बनारस, अयोध्या, लखनऊ, आगरा और वृन्दावन होते हुए हिमालय की ओर बढ़ गये। इस यात्रा में उन्हें अनेक कष्ट झेलने पड़े। भूखों मरने तक की स्थिति आयी। अंत में वे बीमार होकर कलकत्ता लौट आये। इस यात्रा में उन्होंने अपने देश की भयंकर दुर्दशा को आँखें खोलकर देखा जिससे उनका हृदय द्रवित हो उठा।

दूसरी बार जुलाई १८९० ई० में वे फिर सारे भारत के भ्रमण का संकल्प लेकर निकले। उन्होंने कलकत्ता से काठियावाड़ और राजस्थान से रामेश्वरम तक की यात्रा की। इस बार यदि एक ओर अनेक राजा महाराजाओं से उनका परिचय हुआ तो समाज के निचले स्तर के लोगों-अंत्यजों के भी वे निकट संपर्क में आये। कभी राजमहल में ठहराये गए तो कभी अस्तबल में भी रात बितायी। इस यात्रा में देश के विस्तृत भू–भाग का तो जीवंत संस्पर्श प्राप्त किया ही, अनेक विभिन्नताओं और विषमताओं के अंतराल में वास करती मूलभूत आध्यात्मिक तथा भावनात्मक एकता की भी अनुभूति पायी। वे देश को उसकी चरम निर्धनता, अशिक्षा और जड़ता से मुक्ति दिलाने के लिए बेचैन हो उठे। इसी यात्रा के दौरान उन्हें ज्ञात हुआ कि १८९३ ई० में शिकागो (अमेरिका) में एक विश्व धर्म सम्मेलन होने वाला है। उन्होंने उक्त सम्मेलन में भाग लेने का निश्चय किया। सम्मेलन में भारतीय वेदांत और हिंदू धर्म की ध्वजा फहराने के अति-

रिक्त उनका यह भी उद्देश्य था कि किसी प्रकार विदेशियों से सहायता प्राप्त कर देश का कुछ कल्याण किया जाय ।

३१ मई १८९३ ई० को बंबई से नरेन्द्र शिकागो के लिए रवाना हुए। वहाँ उन्होंने नरेन्द्र नाथ का अपना पुराना अभिधान त्यागकर विवेकानन्द का नवीन नाम ग्रहण किया। विवेकानन्द अमेरिका किस प्रकार पहुँचे, राह में उन्हें कितनी विकट कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और कैसे हार्वर्ड विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्याविद प्राध्यापक राइट की कृपा से उन्हें विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लेने की अनुमति मिल सकी, इसका विवरण कोलंबस के यात्रा वृतांत से कम रोमांचक नहीं।

११ सितम्बर १८९३ का सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। पहले दिन की कार्रवाई में विवेकानन्द को सबसे अंतिम जब श्रोता लगभग उब चुके थे, बोलने का अवसर दिया गया। लेकिन विवेकानन्द के संबोधन मात्र से सारा हाल तालियों से गूंज उठा, लोगों की उदासी काफूर हो गयी और वे खड़े होकर हर्ष ध्वनि करने लगे। उन्होंने कहा मुझको ऐसे धर्मावलम्बी होने का गौरव है, जिसने संसार को सहिष्णु तथा सब धर्मों को समान सम्मान प्रदान करने की शिक्षा दी है। हम लोग सब धर्मों के प्रति सहिष्णुता में ही नहीं विश्वास करते, वरन सबको एक ही लक्ष्य तक पहुँचने के विभिन्न मार्गों के रूप में स्वीकारते हैं।"

विवेकानन्द ने अभिनव भाषा में वेदांत की मार्मिक व्याख्या करते हुए हिन्दू धर्म की विशेषताओं से पश्चिम को परिचित कराया। साथ ही उन्होंने अमेरिका वासियों से यह भी कहा कि तुम ईसाई लोग मूर्ति पूजकों की आत्मा के बचाव के लिए घने प्रचारक भेजते हैं, गिरजाघर बनवाने में लाखों डालर खर्च करते हो, लेकिन क्या तुमने उनके शरीर की रक्षा के लिए भी कुछ किया है? जो जाति भूख से तड़प रही है, उसके आगे धर्म परोसना उसका अपमान है।

स्वामी जी के भाषणों की अमेरिका में धूम मच गयी। उन पर टिप्पणी करते हुए 'दि न्यूयार्क हेराल्ड' ने लिखा था—जिस देश में ऐसे ज्ञानी पुरुष हैं, वहां धर्म प्रचारक भेजना निरी मूर्खता है। इसके बाद स्वामी जी को अमेरिका और यूरोप के अनेक नगरों से निमंत्रण मिले। उन्होंने लगभग तीन वर्षों तक विदेश में रहकर वेदांत का प्रचार किया और वहां के निवासियों को त्याग और अनासक्ति का महत्व समझाया।

४ जुलाई, १९०२ ई० को केवल साढ़े उनचालीस वर्ष की उम्र इस पराक्रमी एवं दुर्द्धर्ष सन्यासी ने जैसे अविश्रांत कर्म से थक कर आँखें बंद कर ली। उनका स्मरण हमें प्राणिमात्र की एकता के साथ अनवरत कर्म की उपासना का संदेश देता और मातृभूमि की सेवा के लिए प्रतिबद्ध करता है।

अमृत की खेती

मैं भी कृषक हूँ। मेरे पास श्रद्धा का बीज है। उस पर तपश्चर्या की वृष्टि होती है।

प्रज्ञा मेरा हल है। ह्री (पाप करने में लज्जा) की हरिस, मन की जोत और स्मृति की फाल से मैं अपना खेत (जीवन-क्षेत्र) जोतता हूँ।

सत्य ही मेरा खुरपा है। मेरा उत्साह ही मेरा बैल है और यह योग-क्षेम मेरा अधिवाहन है। इस हल को मैं नित्य निरंतर निर्वाण की दिशा में ही चलाया करता हूँ।

मैं यही कृषि करता हूँ। इस कृषि से कृषक को अमृत फल मिलता है, और वह समस्त दुःखों से मुक्त हो जाता है।

—भगवान् बुद्ध

अभिज्ञा

जयगोविन्द सहाय 'उन्मुक्त'

मैं प्यार करता हूँ
लोगों को
अपनी असंगत इच्छाओं के तहत—
मेरा प्यार
मात्र वाहन है
मेरी 'इच्छाओं' का ।
आज को असंगत व्यवस्था में
अन्तर-सम्बन्धों की राहों पर
सफलतापूर्वक दौड़ रहा
मेरी 'इच्छाओं' का 'वाहन'
और, लगता है कि मेरी 'इच्छाएँ'
पहुँचा देंगी मुझे
समृद्धियों की अनेकानेक मंजिलों तक ।

मेरी अस्मिता
आश्वस्त है
'इच्छाओं' की सफलता में
और,
उल्लसित है
सुख-सुविधाओं की परिकल्पना में
किन्तु,
पता नहीं,
क्यों
अशान्त है
मेरी 'इच्छाओं' का सारथी—
मेरा मन ?

मेरे अन्तस में
रह-रहकर उठती है
एक आवाज———
रुको !
ऐ सारथि ! रुको !
अपने प्रकृत पथ की ओर मुड़ो !
अपनी संस्कृति के सत्यानंद से जुड़ो !

सहसा———
रुकता है सारथी (१),......
किन्तु,
पुनः बढ़ जाता है
'इच्छाओं' की राह......

पता नहीं,
कहाँ ले जायेंगी मुझे
मेरी 'इच्छाएँ'
और,
कब तलक मैं
यूँ ही
होता रहूँगा अशान्त !...

काश !
मेरा मन
सुनता—समझता
मेरे अन्तस की आवाज...
और, अपनाता
अपनी प्रकृत संस्कृति का सुसंगत
मार्ग.........

स्वामी विवेकानन्द की लोक-चेतना

डा० केदारनाथ लाभ

स्वामी विवेकानन्द उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय पुनर्जागरण काल के महा ऊर्जस्वी व्यक्तित्व थे। उनका अवतरण भारत के धार्मिक-सांस्कृतिक इतिहास की कदाचित् सर्वोज्वल एवं सर्वाधिक क्रांतिकारी घटना है। वे उन साधुओं में नहीं थे जिनकी सारी साधनाएं विश्व से विमुख होकर अपने मोक्ष के लिए ही होती है। मोक्ष उनका उद्देश्य था अवश्य, किन्तु केवल अपना नहीं वरन् सम्पूर्ण विश्व का या सारी मानव जाति का। इसीलिए, उन्होंने वेदांत के आकाश को, कर्मठता की ठोस धरती पर उतारने का महत् प्रयास किया। उनका वेदान्त, उनका आध्यात्मिक ज्ञान और उनका धार्मिक दृष्टिकोण संसार की कर्म-संकुलता से घवड़ाकर पलायन लेने वाला नहीं बल्कि जीवन के संघर्षों से जूझकर, जीवन की समस्याओं का मुकाबला कर और उन्हें जीत कर ही मोक्ष की प्राप्ति करने वाला था। लोक-मंगल के लिए अपने संपूर्ण जीवन को होम कर देना ही मानो उनके जीवन का एक मात्र व्रत था।

भगवान बुद्ध में गहन चिंतनशीलता, गंभीर विवेक और प्रबल कर्मशीलता थी, किन्तु उनमें भक्ति के लिए अनुराग नहीं था। ईसा मसीह में अपार करुणा और भावुक भक्ति की प्रबलता थी, किन्तु ज्ञान के उस शिखर पर जाने का विशेष आग्रह नहीं था जहाँ पहुँच कर मतों और सम्प्रदायों की दीवारें ढह जाती हैं और मनुष्य-मनुष्य के बीच का भेद मिट जाता है। मुहम्मद साहब में भक्ति की प्रधानता और आचार-बद्धता तो थी किन्तु ज्ञान और वैराग्य के तत्व पर जोर नहीं था। शंकराचार्य में ज्ञान की अग्नि-शिखा तो पूर्णता से प्रज्वलित थी लेकिन जागतिक कर्मों के प्रति कोई आकर्षण नहीं था। किन्तु एक दरिद्र ब्राह्मणी के गर्भ से एक झोपड़ी में उत्पन्न भगवान् रामकृष्ण में एक साथ ही भक्ति, ज्ञान, कर्म और योग की चौमुखी दीप-शिखा झलमला उठी थी। उन्होंने प्रायः अठारह प्रकार की साधनाएँ की थीं। संभवतः विश्व के किसी धर्म-गुरु ने धर्म के इतने कंटकाकीर्ण पथों पर अपने जीवन-काल में इतनी साहसिक और सफल यात्रा नहीं की थी। उनकी हर साधना किसी हिमालय का आरोहण थी, उनकी हर तपस्या किसी अनजान देश की तलाश के लिए किसी महासागर के वक्ष पर की गयी कोलम्बस की यात्रा थी। और स्वामी विवेकानन्द ने स्वभावतः अपने गुरुदेव से विरासत में वे तमाम वस्तुएँ उपलब्ध की थीं जिन पर परमहंस रामकृष्ण देव का आधिपत्य था। यही कारण है कि विवेकानन्द जी में ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिगुणात्मक शक्तियों का अद्भुत् समाहार हो गया था। अन्तर इतना ही था कि श्री रामकृष्ण देव बाहर से भक्त थे, भीतर से ज्ञानी और स्वामी जी भीतर से भक्त थे बाहर से ज्ञानी। कर्मशीलता की निर्झरणी अपने ढंग पर दोनों में समान गति से बह रही थी।

श्री रामकृष्ण की साधना का पीयूष-रस लेकर स्वामी जी ने उसे लोक-मंगल के लिए सारे विश्व में प्रवाहित कर दिया। महाकवि रामधारी सिंह 'दिनकर' ने अपने 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक ग्रंथ में ठीक ही लिखा है कि 'परमहंस रामकृष्ण ने साधनापूर्वक धर्म की जो अनुभूतियाँ प्राप्त की थीं, स्वामी विवेकानन्द ने उनसे व्यावहारिक सिद्धांत निकाले। बहुत दिनों से हिन्दुओं का विश्वास रहा है कि हृदय के पूर्ण रूप से निर्मल हो जाने पर, मन से स्वार्थ की सारी गंध निकल जाने पर एवं चित्त में छल की छाया भी नहीं रहने पर मनुष्य की सहज वृत्ति पूर्ण रूप से जाग्रत हो जाती है एवं तब धर्म की अनुभूतियाँ

उसके भीतर आप से आप जागने लगती हैं। रामकृष्ण के जीवन में यह सत्य साकार हो उठा था। अतएव, धर्म की सारी उपलब्धियाँ उन्हें आप से आप प्राप्त हो गयीं। उन उपलब्धियों के प्रकाश में विवेकानन्द ने उन समग्र विश्व की समस्याओं पर विचार किया एवं उनके जो समाधान उन्होंने उपस्थित किये थे, वे, असल में रामकृष्ण के दिये हुए ही समाधान हैं। रामकृष्ण और विवेकानन्द, ये दोनों, एक ही जीवन के दो अंश, एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। रामकृष्ण अनुभूति थे, विवेकानन्द उनकी व्याख्या बनकर आए। रामकृष्ण दर्शन थे, विवेकानन्द ने उनके क्रिया पक्ष का आख्यान किया।'

स्वामी निर्वेदानन्द ने राम कृष्ण को हिन्दू धर्म की गंगा कहा है जो वैयक्तिक समाधि के कमंडलु में बन्द थी। विवेकानन्द इस गंगा के भगीरथ हुए और उन्होंने देव सरिता को रामकृष्ण के कमंडलु से निकाल कर सारे विश्व में फैला दिया।

एक बात और है। शंकराचार्य के समय में ही भारतीय धर्म-साधना में निवृत्ति मार्ग ने जो जोर पकड़ा वह कबीर तक बना रहा। भक्ति-काल के तुलसी-सूर जैसे भक्तों ने प्रवृत्ति पक्ष का समर्थन तो अवश्य किया; किन्तु अपने अन्तर्मन में वे भी मानते थे कि ब्रह्म, ही सत्य है और जगत् मिथ्या है। इसी से प्रवृत्ति का गुणगान करने पर भी उनलोगों ने कोई गृहस्थी नहीं बसायी और एक संन्यासी का जीवन जिया। कबीर नानक आदि संतों ने विवाह कर गार्हस्थ्य धर्म को मर्यादा अवश्य दी किन्तु उनकी साधना का संगीत भी ज्ञान और निवृत्ति के एक तारे पर ही गूंजता रहा। स्वामी विवेकानन्द ने पहलीबार वेदान्त के ज्ञान को ठोस निवृत्ति की गहन-गुफा से निकालकर प्रवृति की चट्टान पर प्रतिष्ठित किया और धर्म में कर्मशीलता का प्रखर शंख-नाद कर हमारी जड़ता को ही समूल झकझोर दिया।

स्वामीजी, उस विराट् सागर की तरह थे जिसमें धर्म और राजनीति, राष्ट्रीयता और अन्तर्राष्ट्रीयता एवम् वेदान्त और विज्ञान एक साथ ही गलबांही करते हुए महाज्वार बनकर आकाश चूमने को मचल उठते हैं। उन्होंने नूतन भारत को एक नयी दृष्टि दी, एक नयी दिशा दी, और एक नया निर्देश दिया। स्वभावतः रवीन्द्र नाथ ठाकुर का कथन है—'यदि आप भारत को समझना चाहते हैं तो विवेकानन्द को पढ़िए। उनमें सब कुछ विधेयात्मक हैं, आभासात्मक या नकारात्मक कुछ भी नहीं!' योगिराज अरविन्द ने कहा है —'पश्चिमी जगत् में विवेकानन्द को जो सफलता मिली, वही इस बात का प्रमाण है कि भारत केवल मृत्यु से बचने को नहीं जगा है वरन् वह विश्व विजय करके दम लेगा।' और नेताजी सुभाष चन्द्र बोस ने स्वामी विवेकानन्द की देन का विवेचन करते हुए लिखा था—'स्वामी विवेकानन्द का धर्म राष्ट्रीयता को उत्तेजना देने वाला धर्म था। नयी पीढ़ी के लोगों में उन्होंने भारत के प्रति भक्ति जगायी, उसके अतीतके प्रति गौरव एवं उसके भविष्य के प्रति आस्था उत्पन्न की। उनके उद्गारों से लोगों में आत्म-निर्भरता और स्वाभिमान के भाव जगे हैं। स्वामीजी ने सुस्पष्ट रूप से राजनीति का एक भी संदेश नहीं दिया किन्तु, जो भी उनके अथवा उनकी रचनाओं के सम्पर्क में आया, उसमें देश भक्ति और राजनीतिक मानसिकता आप से आप उत्पन्न हो गयी।"

उपर्युक्त उक्तियो में अतिशयता नहीं वास्तविकता है। स्वामीजी व्यावहारिक दृष्टि से सम्पन्न संन्यासी थे। इसलिए पश्चिमी देशों को उन्होंने संयम और त्याग का मंत्र दिया लेकिन भारत के लोगों की दृष्टि उन्होंने भारत के सामाजिक-आर्थिक पतन तथा उसकी दीनावस्था की ओर खींची एवं धर्म का उन्होंने वह रूप प्रस्तुत किया जो मनुष्य के भौतिक विकास के पथ में बाधा बनकर नहीं खड़ा हो।

स्वामी जी के समय में भारत गरीबी, अकाल, महामारी, छुआ-छूत, ऊँच-नीच का भेद-भाव तथा

मानसिक दासता की जंजीर में जकड़ा कराह रहा था। स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों और कर्मों के द्वारा उस श्रृंखला को तोड़ फेंकने का हिमालयी आह्वान किया। उन्होंने पश्चिमी देशों को ललकारते हुए कहा कि वे भारत के भूखे निर्धन और पीड़ित मनुष्यों के एक हाथ में रोटी और दूसरे हाथ में बाइबिल थमाने का दुष्कर्म न न करें। शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में स्वामीजी ने ईसाइयों के सामने निर्भयता पूर्वक गर्जन करते हुए घोषणा की थी—"तुम ईसाई लोग मूर्तिपूजकों की आत्मा के बचाव के लिए भारत में धर्म-प्रचारक भेजने को बहुत ही आतुर दीखते हो। किन्तु, इन मूर्तिपूजकों के शरीर को क्षुधा की ज्वाला से बचाने के लिए तुम क्या कर रहे हो? भयानक दुर्भिक्षों के समय लाखों भारतवासी निराहार मर गये, किन्तु तुम ईसाइयों से कुछ भी नहीं बन पड़ा। भारत की भूमि पर गिरजों पर गिरजे बनवाते जा रहे हो, किन्तु तुम्हें यह ज्ञात नहीं है कि पूर्वी जगत् की आकुल आवश्यकता रोटी है, धर्म नहीं। धर्म एशियावालों के पास अब भी बहुत है। वे दूसरों से धर्म का पाठ नहीं पढ़ना चाहते। जो जाति भूख से तड़प रही है, उसके आगे धर्म परोसना, उसका अपमान है। जो जाति रोटी को तरस रही है, उसके हाथ में दर्शन और धर्म-ग्रंथ रखना उसका मजाक उड़ाना है।"

स्वामीजी ने एक ओर भारतवासियों में निर्भीकता साहस और स्वाभिमान का अवलंबन लेने को उत्प्रेरित किया तो दूसरी ओर उन्हें शारीरिक दृष्टि से भी सबल सशक्त बनने का उपदेश दिया। उन्होंने सिंहनाद करते हुए कहा—'मैं भारत में लोहे की मांसपेशियाँ और फौलाद की नाड़ी तथा धमनी देखना चाहता हूँ, क्योंकि इन्हीं के भीतर वह मन निवास करता है जो बिजलियों और वज्रों से निर्मित होता है। शक्ति, पौरुष, क्षात्र वीर्य और ब्रह्म तेज, इनके समन्वय से भारत की नयी मानवता का निर्माण होना चाहिए।'

देश के लोगों को शारीरिक दृष्टि से दुर्बल; पिलपिले तथा बीमार देखकर ही उन्होंने अपने एक शिष्य के पूछने पर भारतवासियों के लिए मांसाहार का समर्थन किया था। उनके शिष्य ने पूछा था—'मछली तथा मांस खाना क्या उचित तथा आवश्यक है?', स्वामीजी ने उत्तर दिया—'खूब खाओ भाई, इससे जो पाप होगा वह मेरा। तुम अपने देश के लोगों की ओर एक बार ध्यान से देखो तो, मुँह पर मलीनता की छाया—छाती में न साहस न उल्लास—पेट बड़ा, हाथ पैरों में शक्ति नहीं—डरपोक और कायर!" जब शिष्य ने कहा कि पूर्वी बंगाल में हम दोनों समय मछली भात खाते हैं तब स्वामीजी ने कहा—'खूब खाया कर। घास-पात खाकर पेट-रोग से पीड़ित बाबाजी लोगों के दल से देश भर गया है। वे सत्वगुण के लक्षण नहीं हैं। महा तमो गुण की छाया है—मृत्यु की छाया है। सत्वगुण के लक्षण हैं—मुख मंडल पर चमक—हृदय में अदम्य उत्साह, अतुल चपलता, और तमोगुण के लक्षण हैं आलस्य-जड़ता-मोह-निद्रा आदि।' (वैसे स्वामीजी ने अन्यत्र लिखा है कि जिस भोजन के दुष्पाच्य होने के कारण अजीर्ण आदि रोगों की उत्पत्ति होती है अथवा वैसा न होने पर भी जिससे शरीर की उष्णता में वृद्धि होकर इन्द्रिय व मन में अकारण चंचलता उत्पन्न होती है, उसे सर्व प्रकार से त्यागना चाहिए। परन्तु भारत वर्ष के साधारण गृहस्थों के बारे में स्वामीजी मांसाहार के पक्षपाती थे।)

स्वामीजी में लोक-चेतना और पर-दुःख-कातरता कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे भारत वासियों की दुरवस्था देखकर कभी-कभी फूट-फूट कर रो पड़ते थे। 'केष्टा' नामक एक संथाली मजदूर कभी-कभी जब स्वामीजी से कहा करता था कि वे उससे काम के समय आकर बातें नहीं करें क्योंकि मठ के दूसरे संन्यासी आकर उसे डांटते हैं तब यह सुनकर स्वामीजी की आँखें

छलछला जाती थीं।

एक दिन स्वामीजी ने 'केष्टा' को पूरी, तरकारी। मिठाई दही आदि का भोजन उसके सामने स्वयं बैठकर कराया। उसके यह कहने पर कि 'हमलोगों ने कभी ऐसा नहीं खाया' स्वामीजी ने कहा—'तुम लोग तो नारायण हो—आज मैंने नारायण को भोज दिया' फिर मठ के संन्यासियो को सम्बोधित कर कहने लगे—'देखो, ये लोग कैसे सरल हैं। इनका दुःख थोड़ा बहुत दूर कर सकोगे ? नहीं तो भगवे वस्त्र पहनने से फिर क्या हुआ ? परहित के लिए सर्वस्व अर्पण—इसी का नाम वास्तविक संन्यास है। इन्हें कभी अच्छी चीजें खाने को नहीं मिली। मन में आता है—मठ आदि सब बेच दूँ, इन सब गरीब—दुःखी दरिद्र—नारायणों में बाँट दूँ। हमने वृक्षतल को ही तो आश्रय—स्थान बना रखा है। हाय ! देश के लोग पेट भर भोजन भी नहीं पा रहे हैं, फिर हम किस मुँह से अन्न खा रहे हैं ? .... देश के लोग दो वक्त दो दाने भी खाने को नहीं पाते, यह देखकर कभी-कभी मन में आता है—छोड़ दे शंख बजाना, घंटी हिलाना, छोड़ दे लिखना-पढ़ना और स्वयं मुक्त होने की चेष्टा—हम सब मिलकर गाँव-गाँव में घूमकर चरित्र और साधना के बल पर धनिकों को समझाकर, धन संग्रह करके ले आयें और दरिद्रनारायण की सेवा करके जीवन बिता दें।'

स्वामीजी अपनी चेतना के तार से प्रत्येक व्यक्ति की चेतना को जुड़ा हुआ अनुभव करते थे और इसी कारण से वे किसी के दुःख से द्रवीभूत हुए बिना नहीं रह पाते थे। वे धर्म का अर्थ भौतिकता या भौतिक सुखों से विमुख होकर जीवन को यातना देना नहीं मानते थे। वे जानते थ कि भूखे पेट से ईश्वर की आराधना नहीं हो सकती। त्याग भोगियों के लिए आवश्यक है, भूखों के लिए नहीं। जिसे पेट भर दाना नहीं मिलता उसे त्याग का उपदेश देना उसके साथ मजाक करना है। उन्होंने कहा है—'अरे, धर्म-कर्म करने के पहले कूर्म-अवतार की पूजा करनी चाहिए। पेट है वह कूर्म। पहले इसे ठंडा किए बिना तेरी धर्म-कर्म की बात कोई ग्रहण नहीं करेगा।'

स्वामीजी ने भारत में जात-पात को लेकर होने वाले भेद-भाव के प्रति भी जबर्दस्त आवाज उठायी थी। आज से प्रायः सौ वर्ष पहले ही उन्होंने भारत के लोगों को हरिजनों और निम्न जातियों के विरुद्ध उच्च वर्ण की कठोर-भावना या घृणा-भाव के प्रति लोगों को सतर्क करते तथा इसे भारत के विकास में महान् बाधक मानते हुए चेतावनी दी थी—'ये जो किसान, मजदूर, मोची मेहतर आदि हैं इनकी कर्मशीलता और आत्म निष्ठा तुम में से कई लोगों से काफी अधिक हैं। ये लोग चिर काल से चुपचाप काम किए जा रहे हैं, देश का धन-धान्य उत्पन्न कर रहे हैं, पर अपने मुँह से कभी आवाज नहीं निकालते। ये लोग शीघ्र ही नम्र लोगों से ऊपर उठ जायेंगे।

एक अन्य अवसर पर स्वामीजी ने पुनः कहा—'देश इन गरीब दुखियों के लिए कुछ नहीं सोचता है रे ? जो लोग हमारे राष्ट्र की रीढ़ हैं-जिनके परिश्रग से अन्न पैदा हो रहा है—जिन मेहतर, डोमों के एक दिन के लिए भी काम बन्द कर देने पर शहर भर में हाहाकार मच जाती है—हाय ! हम क्यों न उनके साथ सहानुभूति करें। सुख-दुःख में सांत्वना दें। क्या देश में ऐसा कोई भी नहीं है रे ! यह देखो न—हिन्दुओं की सहानुभूति न पाकर मद्रास प्रान्त में हजारो पेरिया ईसाई बने जा रहे हैं,पर ऐसा न समझना कि वे केवल पेट के लिए ईसाई बनते हैं। असल में हमारी सहानुभूति न पाने के कारण वे ईसाई बनते हैं। हम दिन-रात उन्हें केवल यही कहते रहे हैं, छुओ मत, छुओ मत।"

स्वामी जी का ध्यान भारत की नारियों की

दयनीय अवस्था की ओर भी गया था। यहाँ नर-नारियों के प्रति जो भेद-भाव है उसके विरुद्ध भी उन्होंने गर्जना की थी। जिस समाज में नारी को आदर, समानता और उचित सम्मान से वंचित रखा जायगा वह समाज कभी सभ्य नहीं कहला सकता। जिस समाज में नारियाँ अशिक्षित हों, अनेक विकारों और कुप्रथाओं की शिकार हों, जिस समाज में विधवाएँ आँसू बहा- बहाकर जीने के लिए अभिशप्त हों, वह समाज सुसंस्कृत कहलाने का अधिकारी नहीं हो सकता। इसलिए स्वामी जी ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की—'पता नहीं, इस देश में नारियों और नरों में इतना भेद क्यों किया जाता है। वेदान्त तो यही सिखाता है कि सब में एक ही आत्मा का वास है। तुम लोग नारियों की सदैव निन्दा ही करते हो, किन्तु कह सकते हो कि उनकी उन्नति के लिए अब तक तुमने क्या किया है? स्मृतियाँ रच कर तथा गुलामी की कड़ियाँ गढ़ कर पुरुषों ने नारियों को बच्चा जनने की मशीन बना कर छोड़ दिया। नारियाँ महा-काली की साकार प्रतिमाएँ हैं। यदि हमने इन्हें ऊपर नहीं उठाया तो यह मत सोचो कि तुम्हारी अपनी उन्नति का कोई अन्य मार्ग है।

संसार की सभी जातियाँ नारियों का समुचित सम्मान करके ही महान् हुई हैं। जो जाति नारि-यों का सम्मान करना नहीं जानती, वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी न आगे उन्नति कर सकेगी।"

स्वामी जी के व्याख्यानों, लेखों और क्रियाओं को देख कर लगता है मानो उन्होंने भारतीयों के लोक-जीवन को ही समुन्नत, समर्थ और सुसंस्कृत करने के लिए अवतार लिया था और लोक-कल्याण को ही अपने जीवन का परम ध्येय बनाया था। इसीसे उन्होंने कहा था—'मेरे जीवन का परम ध्येय उस ईश्वर के विरुद्ध संघर्ष करना है जो पर-लोक में आनन्द देने के बहाने इस लोक में मुझे रोटियों से वंचित रखता है, जो विधवाओं के आँसू पोंछने में असमर्थ है, जो माँ-बाप से हीन बच्चे के मुख में रोटी का टुकड़ा नहीं दे सकता।

वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द लोक-हित के लिए लोक-चेतना से जुड़कर सामान्य जनों के आध्या-त्मिक एवं भौतिक विकास के लिए संघर्ष करने वाले एक अप्रतिम योद्धा और एक शौर्यशील सेनानी थे। महात्मा गांधी, पंडित जवाहर लाल नेहरू, नेताजी सुभाषचन्द्र बोस, डॉ० राधाकृष्णन् तथा चक्रवर्ती राजगोपालाचारी आदि लोक-नायकों को विवेकानन्द से प्रेरणा मिली, प्रकाश मिला और भारत के जन-जीवन में कार्य करने की सही दिशा मिली। इसी से दिनकर ने लिखा है—"वर्तमान भारत जिस ध्येय को लेकर उठा है उस-का सारा आख्यान विवेकानन्द कर चुके थे। बाद के महात्मा और नेता उस ध्येय को कार्य का रूप देने का प्रयास करते रहे हैं। जिस स्वप्न के कवि विवेकानन्द थे, गांधी और जवाहरलाल उसके इंजीनियर हुए।"

अत्यंत सामान्य कर्मों को भी घृणा की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। जो मनुष्य कोई श्रेष्ठ आदर्श नहीं जानता, उसे स्वार्थ-दृष्टि से ही—नाम-यश के लिए ही—काम करने दो। परन्तु यह आवश्यक है कि प्रत्येक मनुष्य को उच्चतर ध्येयों की ओर बढ़ने तथा उन्हें समझने का प्रबल यत्न करते रहना चाहिए। कर्मफलों को एक ओर रहने दो, उनकी चिन्ता हमें क्यों हो? यदि तुम किसी मनुष्य की सहायता करना चाहते हो, तो इस बात की कभी चिंता मत करो कि उस आदमी का व्यवहार तुम्हारे प्रति कैसा रहता है। यदि तुम एक श्रेष्ठ एवं भला कार्य करना चाहते हो, तो यह सोचने का कष्ट मत करो कि उसका फल क्या होगा!

स्वामी विवेकानन्द

स्वामी अभेदानन्द के पत्र

दार्जिलिंग
बालेन विला
२० जुलाई, १९२३.

प्रिय गणेश,

तुम्हारा पत्र पाकर प्रसन्नता हुई। मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि कलकत्ता लौटकर तुम ध्यान पूर्वक अध्ययन करने लगे हो। अब तुम्हें अपना अध्ययन पूरी तल्लीनता के साथ जारी रखना चाहिए। जब उपयुक्त समय आयगा, ठाकुर (श्री रामकृष्ण) तुम्हें खींच लेंगे।

तुम्हारे पिताजी कल आये। प्रायः एक घंटे तक विभिन्न विषयों पर मैंने उनसे बातें कीं। बातों के क्रम में मुझे ज्ञात हुआ कि वे स्वामी विवेकानन्द के शिष्य हैं। मैं पहले यह नहीं जानता था और न तुमने ही कभी यह मुझसे कहा था। फिर भी मैं उनसे बातें कर अत्यन्त आह्लादित था।

मेरी इच्छा यहाँ एक आश्रम स्थापित करने की है जिसके साथ एक अनाथालय भी जुड़ा रहेगा। आश्रम में श्री ठाकुर का एक मठ होगा तथा संन्यासियों और ब्रह्मचारियों का आवासीय स्थल होगा। वे बालक बालिकाओं के विद्यालय, पुस्तकालय एवं अनाथालय का संचालन करेंगे।

जब मैंने तुम्हारे पिता से अपनी इच्छा के संबंध में कहा तब उन्होंने कहा कि वे राज्यपाल से कहकर मेरे लिए सहायता उपलब्ध करा देंगे। उनकी मदद से मैं यहाँ श्री ठाकुर का आश्रम स्थापित कर सकूँगा, इसकी मुझे बड़ी आशा है।

मुझे पता चला है कि कलकत्ता आने पर तुम नगेन से मिले। नगेन से कहना कि वह कलकत्ता से चैतन्य चारितामृत' की एक प्रति मेरे पास भेज दे, क्योंकि यहाँ किसी से उस पुस्तक की एक प्रति भी मुझे नहीं मिल सकी।

सदैव अपने मन को पवित्र बनाये रखने का प्रयत्न करना। जैसा मैंने बताया था उसी प्रकार 'जप' करो। बाद में जब समय आयगा मैं तुम्हें ब्रह्मचर्य में दीक्षित करूँगा।

मैं सकुशल हूँ। चिन्ताहरण ठीक है। वह संपूर्ण हृदय से मेरी सेवा करता रहा है। गुरु के प्रति उसकी भक्ति विस्मयकारिणी है। मेरा प्यार और आशीर्वाद ग्रहण करो।

तुम्हारा
अभेदानन्द

(२)

दार्जिलिंग
बालेन विला
४ अगस्त, १९२३ ई०

प्रिय गणेश,

तुम्हारा पत्र मिला। मुझे लगता है कि तुम संस्कृत पढ़ रहे होगे। प्रत्येक व्यक्ति को संस्कृत पढ़नी चाहिए क्योंकि संस्कृत साहित्य के द्वारा हम प्राचीन भारतीय आदर्शों, संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान आदि से परिचित हो सकते हैं।

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य हो सकता है कि कभी मैं धारा-प्रवाह संस्कृत बोल और पढ़ सकता

था।

नीचे मैं तुम्हारे द्वारा भेजे गये चार प्रश्नों के उत्तर दे रहा हूँ :—

(१) मनुष्य को सुख और दुःख उसके कर्मों के फल के अनुसार मिलते हैं। उसके सुख-दुःख के लिए दूसरा कोई भी जबावदेह नहीं है।

(२) मनुष्य के द्वारा अर्जित ज्ञान नष्ट नहीं होता। दूसरे जन्म में वह पूर्व जन्म की मृत्यु के समय की प्राप्त अवस्था से शुरू करता है। शरीर के विनाश के साथ उसका ज्ञान नहीं विनष्ट हो जाता ठीक वैसे ही जैसे डाक्टरी की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर तुम चाहे कलकत्ता में रहो या दिल्ली अथवा अमेरिका चले जाओ चिकित्सा शास्त्र का तुम्हारा ज्ञान समान ही रह जाता है। उसी प्रकार ईश्वर या आत्मा के विषय में जो ज्ञान तुम प्राप्त करते हो वह मरणोपरान्त भी सदा तुम्हारे साथ रहेगा और शरीर के विनाश होने पर विनष्ट नहीं होगा।

(३) श्री ठाकुर (श्री रामकृष्ण) किसी के कान में मंत्र नहीं कहते थे। वे अपनी उँगली से जीभ पर लिख देते थे। विशेष स्थिति में वे शक्ति का जागरण कर देते थे। मैंने अपनी आँखों से कुछ लोगों को मंत्र लेने के बाद समाधि में जाते हुए देखा है।

(४) जिन्होंने श्री रामकृष्ण का नाम सुनकर ही उनकी शरण में अपने को अर्पित कर दिया है, श्री रामकृष्ण को आँखों देखकर उनकी शरण में आनेवालों की अपेक्षा अधिक आस्थावान हैं। क्योंकि, हमलोगों ने उन्हें देखा, हमलोगों ने उनके शब्द सुने, हमलोग उनसे मिले और हमलोगों में से कुछ ने उनकी परीक्षा भी ली। लेकिन तुम हमलोगों से अधिक विश्वासपूर्ण और सौभाग्यशाली हो क्योंकि तुमने अपनी नश्वर आँखों से उन्हें नहीं देखा है। तुमने हमलोगों से उनके विषय में केवल सुना और उनकी बाँहों में दौड़कर चले गए हो।

कल मैंने एक लोक-भवन(पब्लिक हॉल) में भाषण किया। विषय था "आंतरिक धर्म और श्री रामकृष्ण" उपस्थिति अच्छी थी। आज सर जे० सी० बोस का आमंत्रण आया है। मैं दोपहर के बाद उनसे मिलने जाऊँगा। मैं स्वस्थ हूँ, यद्यपि थोड़ा मोतिया-बिन्द हो गया है फिर भी मैं बिल्कुल ठीक हूँ। आशा है तुम अच्छे हो।
मेरे आशीर्वाद लो।

तुम्हारा—
अभेदानन्द

(३)

दार्जलिंग
वालेन विला,
१६ अगस्त १९२३

प्रिय गणेश,

यथा समय तुम्हारा पत्र मिला। पिछले कुछ दिनों से यहाँ भारी वर्षा हो रही है। मैं काम के लिए बाहर नहीं जा सकता। सूर्य-देव ने पूरी तरह अपना मुखड़ा छिपा लिया है। कल मुझे मुकुन्द बाबू का पत्र मिला। पत्र से मालूम हुआ कि कलकत्ते की समिति का अच्छी तरह संचालन हो रहा है। तुम जानना चाहते थे कि क्या मैंने केशव सेन को देखा है! हाँ, मैंने उन्हें दो-तीन बार देखा और व्याख्यान सुने हैं। लेकिन दक्षिणेश्वर में जब वे ठाकुर के दर्शनार्थ आया करते थे, वहाँ मैंने उन्हें नहीं देखा था। अन्य

सह-बन्धुओं से मैंने ठाकुर और केशव बाबू के विलक्षण संकीर्तन के बारे में सुना है। यदि कोई श्री ठाकुर और केशव बाबू—इन दो महापुरुषों के मिलन की मधुर-कथा उनकी जीवनी के आधार पर लिखे तो देश और लोगों के लिए यह बहुत लाभदायक होगी। यह मेरी प्रबल इच्छा है।

तुम यह जानना चाहते हो कि अपने ईष्ट का कैसे ध्यान करोगे। इष्ट का ध्यान हृदय या आज्ञा चक्र में करना चाहिए। इसे कैसे करना चाहिए, यह मैंने तुम्हें सिखाया था। इष्ट का ध्यान करने के पूर्व यह प्रार्थना करनी चाहिए और धीरे-धीरे ईष्ट में डूब जाना चाहिए। गीत यह है——

क्या तुम मेरी आत्मा के शरण-स्थल हो ?
मैं तुम्हारी आराधना प्रेम के पुष्पों की माला से करता हूँ क्या तुम मेरी हृदय गुफा में, ईश्वर के इस मठ में, अवस्थित हो ?
संभवत: इसी कारण असीम आनन्द मेरे
हृदय में तरंगित हो रहा है,
इसी से जब मैं हरि का नामोच्चार करता हूँ
मेरी भिक्षुक आत्मा आँसुओं से तर हो जाती है
मेरे हृदय में रक्त-धारा तीव्र हो उठती है
मेरी रसना वाणी-विहीन हो जाती है
समस्त सांसारिक बंधन टूट जाते हैं—
ज्यों ही मुझे तुम्हारा स्पर्श प्राप्त होता है।
अब मैं अपनी आँखें मूँद लूँगा
योगासन में बैठूँगा और केवल तुम्हारा ध्यान करूँगा।
तुम मेरे साथ क्रीड़ारत हो
मैं तुममें समाहित हो गया हूँ
हम दोनों एकमेक हो गये हैं और
"अब मैं तुम हूँ, और तुम मैं हो।"

मैंसकुशल हूँ। आशा है तुम भी सकुशल हो। मेरे आशीर्वाद लो।

तुम्हारा—
अभेदानन्द

(४)

दार्जिलिंग
बालेन विला,
२१ अगस्त, १९२३

प्रिय गणेश

कल तुम्हारा पत्र मिला। नियमानुसार तुम्हे इन उपदेशों का पालन करना चाहिए:—

(१) ईश्वर को अर्पित किये बिना कुछ भी ग्रहण नहीं करो। यदि शुरू में एक या दो दिन तुम भूल जाते हो, तो कोई क्षति नहीं है। कोई भोज्य-पदार्थ जो ईश्वर को अर्पित नहीं किया गया (भोग नहीं लगाया गया) वह दूसरे के पत्तल के जूठन या गोमांस के बराबर है।

(२) नियमित रूप से प्रत्येक दिन प्रात: और सायंकाल हर सांस के साथ अपने इष्ट का नाम लेने का प्रयास करो।

(३) भूल से भी झूठ मत बोलो। दूसरों की बुराई मत करो अथवा दूसरों के दोषों पर वाद-विवाद मत करो। दूसरों की बुराई करने की अपेक्षा तुम अपना समय सोकर बिता दो, यह कहीं अच्छा है।

(४) कोई बुरा विचार अपने मन में मत आने दो।

(५) आज्ञा चक्र पर अपने इष्ट का ध्यान करने का अभ्यास करो। सद्ग्रंथ पढ़ो, और

(६) प्रत्येक स्त्री को माँ की तरह देखो, लेकिन जहाँ तक संभव हो सके उनसे दूर रहने की सावधानी बरतो। नारियों की तस्वीरों में भी सम्मोहन-शक्ति रहती है। वे मन को विकल: विक्षुब्ध कर देती हैं।

मैं सकुशल हूँ। मेरे आशीर्वाद लो।

तुम्हारा,
अभेदानन्द

श्री रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना—८००००४

उत्सव-सूची

[पहला वैशाख, १४ अप्रैल १९८१,—१४ अप्रैल १९८२]

नववर्ष	—मंगलवार १४ अप्रैल १९८१	
श्री शंकराचार्य	—शुक्रवार ८ मई	,,
श्री बुद्धदेव	—सोमवार १८ ,,	,,
स्वामी रामकृष्णानन्द	-बुधवार २९ जुलाई	,,
तुलसी जयन्ती	—रविवार ९ अगस्त	,,
स्वामी निरंजानन्द	—शनिवार १५ ,,	,,
कृष्ण जनमाष्टमी	—रविवार २३ ,,	,,
स्वामी अद्वैतानन्द	—शुक्रवार २८ ,,	,,
स्वामी अभेदानन्द	—मंगलवार २२ सितम्बर	,,
स्वामी अखण्डानन्द	—सोमवार २८ ,,	,,
श्री श्री दुर्गापूजा	—रविवार ४ अक्टूबर से	,,
	—बृहस्पतिवार ८ ,, तक	,,
श्री श्री कालीपूजा	—मंगलवार २७ ,,	,,
स्वामी सुबोधानन्द	—सोमवार ९ नवम्बर	,,
स्वामी विज्ञानानन्द	—गुरुवार १२ ,,	,,
स्वामी प्रेमानन्द	—रविवार ६ दिसम्बर	,,
श्री सारदा देवी	—गुरुवार १७ दिसम्बर	,,
स्वामी शिवानन्द	—सोमवार २१ ,,	,,
क्रिसमस ईव	—गुरुवार २४ ,,	,,
स्वामी सारदानंद	—शुक्रवार १ जनवरी १९८२	
स्वमी तुरीयानंद	— ,, ८ ,,	,,
स्वामी विवेकानंद	—शनिवार १६ ,,	,,
स्वामी ब्रह्मानंद	—बुधवार २७ ,,	,,
स्वामी त्रिगुणातीतानंद	—शुक्रवार २९ जनवरी	,,
श्री सरस्वती पूजा	—शनिवार ३० ,,	,,
स्वामी अद्भुतानंद	—सोमवार ८ फरवरी	,,
शिवरात्रि	— ,, २२ ,,	,,
श्री रामकृष्णदेव	—गुरुवार २५ ,,	,,
होली, चैतन्यदेव	—मंगलवार ९ मार्च १९८२	
स्वामी योगानंद	—शनिवार १३ मार्च १९८२	
राम नवमी	—शुक्रवार २ अप्रैल १९८२	

एकादशी तिथि—संध्या आरती के बाद श्री श्री रामनाम संकीर्तन

बुधवार —	१५	अप्रैल	१९८१
गुरुवार —	३०	अप्रैल	१९८१
,, —	१४	मई	,,
शनिवार —	३०	,,	,,
,, —	१३	जून	,,
रविवार —	२८	,,	,,
,, —	१२	जुलाई	,,
सोमवार —	२७	,,	,,
मंगल० —	११	अगस्त	,,
मंगल० —	२५	अगस्त	,,
गुरुवार —	१०	सितम्बर	,,
,, —	२४	,,	,,
शुक्रवार —	९	अक्टूबर	,,
शुक्रवार —	२३	अक्टूबर	१९८१
रविवार —	८	नवम्बर	,,
,, —	२२	,,	,,
मंगलवार —	८	दिसम्बर	,,
सोमवार —	२१	,,	,,
बुधवार —	६	जनवरी	१९८२
,, —	२०	,,	,,
गुरुवार —	४	फरवरी	,,
शुक्रवार —	१९	,,	,,
शनिवार —	६	मार्च	,,
रविवार —	२१	मार्च	१९८२
रविवार —	४	अप्रैल	१९८२

श्रीकांत लाभ, कंकड़ बाग, पटना—१६ द्वारा प्रकाशित, डॉ० केदारनाथ लाभ द्वारा सम्पादित एवं जनता प्रेस, ममाटोला, पटना—४ में मुद्रित

विवेकवाणी

'माँ, मुझे मनुष्य बना दो'

"ऐ वीर, साहस का अवलम्बन करो। गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है। तुम चिल्लाकर कहो कि मूर्ख भारतवासी, दरिद्र भारतवासी, ब्राह्मण भारतवासी, चाण्डाल भारतवासी, सभी मेरे भाई हैं। भारत के दीन–दुखियों के साथ एक होकर गर्व से पुकार कर कहो—'प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत की देव-देवियाँ मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरे बचपन का झूला, जवानी की फुलवारी और बुढ़ापे की काशी है।' भाई, कहो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है, और रात-दिन तुम्हारी यही रट लगी रहे—'हे गौरीनाथ, हे जगदम्बे, मुझे मनुष्यत्व दो। माँ, मेरी दुर्बलता और कापुरुषता दूर कर दो। माँ, मुझे मनुष्य बना दो।"

स्वामी विवेकानन्द

शिक्षा

कुछ उपाधियाँ प्राप्त करने या अच्छा भाषण दे सकने से ही क्या तुम्हारी दृष्टि में वे शिक्षित हो गये! जो शिक्षा साधारण व्यक्ति को जीवन-संग्राम मे समर्थ नहीं बना सकती, जो मनुष्य में चरित्र-बल, परहित-भावना तथा सिंह के समान साहस नहीं ला सकती, वह भी कोई शिक्षा है? जिस शिक्षा के द्वारा जीवन में अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाता है, वही है शिक्षा।

स्वामी विवेकानन्द